कुरआन में जंग की अवधारणा

ब्रिगेडियर एस.के. मलिक

आमुख द्वारा

जनरल एम. जिया-उल-हक

आदम प्रकाशक व वितरक

शानदार मार्केट, चितली क़बर

दिल्ली-11006

सर्वाधिकार सुरक्षित, प्रकाशक की पूर्व लिखित अनुमति के बिना इस पुस्तक के किसी भी अंश का पुनरोत्पादन, पुन्ननिर्माण प्रणाली में संकलन, अथवा इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, छायाप्रतिकरण, रिकार्डिंग और/अथवा अन्य प्रकार से किसी भी साधन या रूप में संप्रेषित नहीं की जा सकती है।

©ब्रिगेडियर एस.के. मलिक

भारतीय पुनर्मुद्रण संस्करण, 1992

मूल्य 90/- रुपये

भारत में मुद्रित

आदम प्रकाशक व वितरक द्वारा प्रकाशित

शानदार मार्केट, चितली क़बर, दिल्ली-110006

जे.आर. आफसेट, दिल्ली-110006 में मुद्रित

अनुक्रमाणिका

आमुख

प्राक्कथन

लेखक की टिप्पणी

आभार ज्ञापन

		पृष्ठ
I	परिचय	1
II	ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य	7
III	जंग के कारण	16
IV	जंग का उद्देश्य	25
V	जंग की प्रकृति एवं आयाम	36
VI	जंग के नीति-सिद्धांत	46
VII	जंग की रणनीति	51
VIII	जंग का संचालन	61
IX	कुरान के सैन्य विचारों का अनुप्रयोग	72
X	महत्वपूर्ण निष्कर्षों का सारांश	142
	कुरान के संदर्भ-विषयवार	147
	कुरान के संदर्भ-सूरावार	149
	कालक्रम	151
	संदर्भ-ग्रंथ सूची	153
	सूची	156

मानचित्र एवं परिशिष्ट

मानचित्र		पृष्ठ
I	अरबिया, फारस एवं रोमन साम्राज्यः 610 ईस्वी पूर्व	7ए

II	फारसी आक्रमणः 610-16 ईस्वी पूर्व	9
III	रोमन प्रतिरोध-आक्रामकः 622-28 ईस्वी पूर्व	14
IV	अरबियाः 610 ईस्वी पूर्व	73
V	बद्र के हमले के पूर्व एवं समझौता अभियान	76
VI	जंग की नैतिकता	77
VII	बद्र की जंग	80
VIII	उहुद की जंग	85
IX	मदीना की घेराबंदीः दृष्टांत	80
X	सैन्य अभियानः 625-32 ईस्वी पूर्व	93

परिशिष्ट

I	पवित्र रसूल के फौजी अभियान	99
II	बद्र पर पवित्र कुरआन	104
III	उहुद की जंगः वृत्त अध्ययन	109
IV	उहुद पर अल्लाह का कोप	127
V	खंदक पर पवित्र कुरआन	133
VI	हुदैबिया पर आसमानी निर्णय	136
VII	तबूक पर कुरआन का संदेश	138

“हे नबी, स्मरण कर, जब अल्लाह ने देवदूतों (फ़रिश्तों) से कहा कि मैं धरती पर एक खलीफा बनाने जा रहा हूं। वे फरिश्ते बोलेः क्या तू उसमें उसे बनायेगा, जो उसमें उपद्रव करेगा और रक्तपात करेगा? जबकि हम तेरी प्रशंसा के साथ तेरे गुण और पवित्रता का गान करते हैं! (अल्लाह) ने कहाः जो मैं जानता हूं, वह तुम नहीं जानते।’’

‘और उसने आदम को सभी वस्तुओं के नाम बता दिये, फिर उन्हें फरिश्तों के समक्ष प्रस्तुत किया और कहाः मुझे इनके नाम बताओ, यदि तुम सच्चे हो!’

सबने कहा, ‘तू पवित्र है। हम तो उतना ही जानते हैं, जितना तूने हमें सिखाया है। वास्तव में तू ज्ञान व बुद्धिमत्ता में पूर्ण है।’

अल्लाह ने कहा, ‘हे आदम! इन्हें इनके नाम बताओ।’ आदम ने जब उनके नाम बता दिये, तो (अल्लाह ने) कहा, ‘क्या मैंने तुमसे नहीं कहा था कि मैं जन्नत और धरती के रहस्यों को जानता हूं तथा तुम जो बोलते हो और जो मन में छिपा जाते हो, सब जानता हूँ?”

बकरा 30-33

<u>प्रकाशक का कथन</u>

प्रिय पाठकः

हम जनरल एस.के. मलिक की पुस्तक जंग की *कुरआन में जंग की अवधारणा (द कुरानिक कॉन्सेप्ट ऑफ वार)* का इलेक्ट्रॉनिक संस्करण लोगों के समक्ष प्रस्तुत करते हुये हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। धार्मिक व राजनीतिक हितों की पूर्ति के लिये अंतर्राष्ट्रीय जिहादी आंदोलन के सैद्धांतिक आधारों एवं आतंकवाद के प्रयोग के लिए दिये जाने वाले ढीठ औचित्यों के विवेचनात्मक महत्व को देखते हुए हम इस भाग को उपलब्ध करा रहे हैं। चूंकि मलिक की यह पुस्तक न केवल जिहाद के इस्लामी सिद्धांत की समकालीन व्याख्याओं में महत्वपूर्ण स्थान रखती है, अपितु पश्चिमी विद्वानों व सैन्य विश्लेषकों तक इसकी पहुंच लगभग न के बराबर है। इस कारण इसका इलेक्ट्रॉनिक पुनर्प्रकाशन अत्यंत आवश्यक था।

इस पुस्तक कुरआन में जंग की अवधारणा की प्रासंगिकता अमरीकी अधिकारियों द्वारा इस पुस्तक के विषय में लिखित व विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित उस सारांश में देखी जा सकती है जो उन्होंने अफगानिस्तान में मारे गये और बंदी बनाये गये जिहादी विद्रोहियों पर लिखा है। यह चकित करने वाली बात है कि मलिक अ-मुस्लिमों के विरुद्ध आक्रामक, तीव्र व निरंतर जिहाद के सिद्धांत एवं विश्व भर में इस्लाम का प्रभुत्व स्थापित करने के लक्ष्य की प्राप्ति के साधन के रूप में आतंकवाद के मजहबी औचित्य को कुरआन में ही पाते हैं और इसी इस्लामी विचारधारा के साथ मिलकर यह सिद्धांत विश्व भर में आतंकवाद फैला रहा है।

इस पुस्तक में मालिक द्वारा जिहाद के पक्ष में दिये गये तर्क भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं, जितना कि पाकिस्तान के दिवंगत राष्ट्राध्यक्ष व सेनाध्यक्ष मुहम्मद जियाउल हक द्वारा लिखित प्राक्कथन एवं पाकिस्तान के दिवंगत महाधिवक्ता अल्लाह बख्श के. ब्रोही द्वारा लिखित आमुख है। इस पुस्तक को लेकर उनकी संबंधित पुष्टि ने जिहाद पर मलिक के विचार को राष्ट्रीय नीति के रूप में स्थापित कर दिया तथा उसकी व्याख्या को राज्य की आधिकारिक स्वीकृति प्रदान कर दी।

जनरल जिया ने जिहाद के विषय में मलिक की व्यापक समझ को ऐसे कर्तव्य के रूप में स्वीकार किया है, जो नागरिकों से लेकर फौजियों तक पर लागू होता है। ब्रोही दारुल इस्लाम (इस्लाम का स्थान) और दारुल हर्ब (जंग का स्थान- जिसका अर्थ है अ-मुस्लिम अर्थात काफिर का स्थान) में भेद स्पष्ट करते हुए इस्लाम के संदेश के प्रसार व स्थापना में किसी भी प्रतिरोध का प्रत्युत्तर देने तथा इसमें आने वाली किसी भी बाधा को हटाने एवं शरिया के अनुसार शासन संचालन लाने के लिये रक्षात्मक जिहाद की पुनर्परिभाषा को स्वीकार करता है। इस विचार से इस्लाम के बढ़ने में किसी का निष्क्रिय प्रतिरोध भी उस पर हमला करने का वैध आधार है।

मलिक के कुरानिक कॉन्सेप्ट ऑफ वार का अध्यन हर उस व्यक्ति के लिये आवश्यक है, जो जिहाद की मजहबी प्रकृति तथा अ-मुस्लिमों पर इस सिद्धांत के प्रभाव को समझना चाहता है। मलिक की यह पुस्तक मुसलमानों की दुनिया में विस्तृत रूप से फैली हुई उस शिक्षा पर मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करती है, जो इस्लामी विचारधारा और इस्लामी जंग व आतंकवाद के बीच महत्वपूर्ण संबंध को मान्यता देता है। हम इस कृति का आमुख लिखने के लिये एलटीसी जोसफ मॉयर्स को भी धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

पैट्रिक पूल एवं मार्क हन्ना

**पैट्रिक पूल द्वारा *"कुरानिक कॉन्सेप्ट ऑफ वार एंड टेरर"* की गई संक्षिप्त विश्लेषण की समीक्षा अवश्य करें।

टिप्पणी

ब्रिगेडियर एस.के. मलिक लिखित *कुरआन में जंग की अवधारणा (द कुरानिक कॉन्सेप्ट ऑफ वार)* ने इस्लामी ''मजहबी जंग'' सिद्धांत एवं इस्लामी संदर्भ में जंग की तैयारी व संचालन की समझ विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मूलत: पाकिस्तान के लाहौर में 1979 में प्रकाशित यह पुस्तक सईद कुतुब की *माइलस्टोन्स* अथवा मुहम्मद फारूख की *द नेग्लेक्टेड ड्यूटी* की भांति ही अल्लाह द्वारा रसूल मुहम्मद के समक्ष प्रकट किये गये आदेश को पूरा करने में इस्लाम की भूमिका व कर्तव्य पर कथन के रूप में देखा जाता है। वह आदेश यह है कि सभी मनुष्यों को इस्लाम की ओर लाया जाए अर्थात *दावा* (धर्मांतरण किया जाए) और पूरे विश्व में इस्लाम की निर्बाध फतह सुनिश्चित करने सहायता की जाए।

कुरआन में जंग की अवधारणा वह आवश्यक संकलन है, जिसका वर्णन इस्लामी रणनीतिक जिहाद के अध्ययन की कसौटी के रूप में किया जा सकता है। इस पुस्तक का प्रकाशन जब हुआ, तो उसके पश्चात पाकिस्तान में जनरल जिया उल-हक का इस्लामी विद्रोह और लगभग उसी समय अफगानिस्तान पर सोवियत रूस का आक्रमण हुआ। शीघ्र ही पाकिस्तान की फौज के लिये इसको पढ़ना अनिवार्य हो गया। इसी प्रकार, पाकिस्तान के पड़ोसी भारतीय सैन्य बल ने इसका संज्ञान लिया और भारत में यह पुस्तक 1992 में पुन:प्रकाशित की गयी।

इसमें रसूल मुहम्मद के पथ में इस्लामी जंग की प्रकृति से संबंधित महत्वपूर्ण विषय-वस्तु हैं, परंतु तब भी पश्चिमी सैन्य गलियारों में यह पुस्तक अपेक्षाकृत अज्ञात ही रही है। मलिक की यह रचना जिहाद के अन्य विद्वानों व बुद्धिजीवियों की श्रेष्ठता को महत्वपूर्ण शैली में चुनौती देती है, क्योंकि यह पश्चिमी सैन्य सिद्धांतों में सुशिक्षित एक ऐसे सेवारत सैन्य सिपाही द्वारा लिखी गयी है जो सैन्य संदर्भ में जिहाद की भूमिका का अनुवाद करने में समर्थ है। इसके अतिरिक्त, भारत में पाकिस्तान के पूर्व राजदूत रह चुके अल्लाह बरक्श के. ब्रोही द्वारा लिखे गये इसके आमुख में ''बुरी ताकतों' से संघर्ष करने के लिये कुरआन के विशिष्ट आदेशों के अंतर्गत मुसलमानों द्वारा जंग छेड़ने एवं लड़ने के लिये अर्द्ध-विधिक आधार देता है। इन आधारों का निरूपण इस अध्ययन के महत्वपूर्ण भाग का गठन करता है।

मलिक की इस कृति की महत्वपूर्ण विषय-वस्तु यह है कि इस्लाम में ''मजहबी जंग'' अथवा जिहाद अंतर्निहित रूप से दीनी जंग, धार्मिक जंग है और यह इस सीमा तक है कि इस्लामी ताकतों को मजहबी रूप से स्वयं को इस प्रकार तैयार करना चाहिए कि वे इस्लाम के शत्रुओं के ''मन में आतंक'' उत्पन्न कर सकें। जैसा कि मलिक विस्तार से वर्णन करता है कि यह आतंक शारीरिक व मानसिक दोनों रूप में होना चाहिए। क्योंकि इस्लामी जंग रणनीति मूलतः अल्लाह की इच्छा का प्रभुत्व स्थापित करने के लिये धरती पर अल्लाह की ताकतों दारुल-इस्लाम एवं अल्लाह के सच्चे ज्ञान से दूर अंधियारे में रहने वाली दारुल-हर्ब की ताकतों के मध्य ब्रह्मांडीय संघर्ष है। यद्यपि जिहाद व आतंकवाद की दुनिया में इस कृति की पहुंच व प्रभाव ज्ञात नहीं है, किंतु पिछले कुछ वर्षों में अल-कायदा और उससे सैद्धांतिक रूप से जुड़े आतंकवादी संगठनों में यह विषय-वस्तु गुंजायमान हो रही है।

लेफ्टिनेंट कर्नल जोसफ सी. मायर्स

यूनाइटेड स्टेट्स आर्मी, मैक्सवेल, एएफबी एएल

10 अक्टूबर 2006

***पैरामीटर्स: द यूएस आर्मी वार कॉलेज क्वार्टरली* के शीतकालीन 2006-07 अंक में एलटीसी मायर्स की द कुरानिक कॉन्सेप्ट आफ वार [HTML] [PDF] की उत्तम समीक्षा निबंध अवश्य पढ़ें।

आमुख

मैं ब्रिगेडियर मलिक की पुस्तक ‘जंग की कुरआन में अवधारणा’ की प्रशंसा में कुछ पंक्तियां लिख रहा हूं। यह पुस्तक फौजी व नागरिक दोनों के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है। **जिहाद फी-सबीलिल्लाह** पेशेवर फौजी का अनन्य क्षेत्र नहीं है, न ही यह केवल फौजी ताकतों के अनुप्रयोग तक ही सीमित है।

यह पुस्तक फौजी ताकत के अनुप्रयोग पर कुरआन के सिद्धांतों को सरल, स्पष्ट और सटीक ढंग से प्रस्तुत करती है। फौजी ताकत का अनुप्रयोग समग्र प्रसंग में जिहाद है। मुसलमान फौज का पेशेवर फौजी मुस्लिम राज्य के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये यदि अपनी सभी गतिविधियों को अल्लाह के रंग में नहीं रंगता, तो 'पेशेवर' नहीं हो सकता। इसी प्रकार मुसलमान राज्य के एक अ-सैन्य नागरिक को भी यह अवश्य जानना चाहिए कि उसका देश किस प्रकार का सिपाही तैयार करता है और जंग का वह एकमात्र प्रारूप क्या है, जो उसके देश की सशस्त्र फौज छेड़े।

मैंने यह पुस्तक अत्यंत रुचि व विश्वास के साथ पढ़ी है। यह पुस्तक उस समझ को विकसित करने में उपयोगी है, जो एक इस्लामी राज्य, फौजी या नागरिक के रूप में हममें होना चाहिए। मैं प्रार्थना करता हूं और मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक बहुत से लोगों द्वारा पढ़ी जाएगी। इतनी लगन व समर्पण के साथ पूरा की गयी इस कृति के लिये अल्लाह लेखक को पुरस्कार देगा।

जनरल एम. जिया-उल-हक

फौज के प्रमुख

प्राक्कथन

ब्रिगेडियर एस.के. मलिक ने युद्ध और शांति के सिद्धांतों पर कुरआन के दृष्टिकोण का व्यापक सर्वेक्षण प्रस्तुत करके इस्लामी न्यायशास्त्र में मूल्यवान योगदान दिया है। उनका यह कार्य ऐसा विद्वतापूर्ण प्रस्तुतिकरण रहा है, जिसे जंग और शांति पर कुरआन की बुद्धिमत्ता के विश्लेषणात्मक पुनर्कथन के रूप में देखा जा सकता है। चूंकि पश्चिमी लेखकों के लेखन में इस विषय की जिन सैद्धांतिक अवधारणाओं पर मंथन किया जाना है, उसका परीक्षण व प्रस्तुतिकरण किया गया है और ये अवधारणाएं कुरआन के सिद्धांतों के प्रसंग में मूल्यवान हैं। जहां तक मुझे ज्ञात है, तो इस्लाम के विधि-विज्ञान साहित्य की ऐसी कोई पुस्तक नहीं दिखती, जिसने उस दृष्टि से समस्या को देखने का प्रयास किया हो, जिस दृष्टि से इस विद्वान लेखक ने अपने आलेख में देखने का प्रयास किया है। इनके परिशिष्टों में पवित्र रसूल के फौजी अभियानों के कुछ विशेष पक्ष देखने को मिलते हैं और विशेष रूप से वो वृत्त अध्ययन मिलते हैं, जिनमें बद्र की जंग के अभिप्राय निहित हैं। उहुद और खंदक में यह दर्शित होता है कि जंग और शांति के विषय में कुरआन जिस प्रकार का आदेश देता है, उस पर लेखक की गहरी अंतदृष्टि है। पुस्तक में बद्र, उहुद और खंदक की जंग में नियोजित युद्धक रणनीति के सिद्धांत प्रारूप को दर्शाने के लिये अनेक मानचित्रों का प्रयोग करके लेखक ने निश्चित रूप से इसका महत्व बढ़ा दिया है। उसने इस पुस्तक में सामान्य संदर्भ-ग्रंथ सूची और कुरआन के उन सभी संदर्भों को सम्मिलित किया है, जिसके आलोक में उसने अपने इस प्रबंध को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

कुरआनी विन्यास में दृष्टिगत है कि मनुष्य की भूमिका 'संघर्ष', अथवा 'सामना करना' और ऊर्जावान ढंग से उन बुरी ताकतों या प्रतिघात करने वालों से संघर्ष करने की है, जो धरती पर उसके सामंजस्य व जीवन के उद्देश्य के साथ संघर्षरत हैं। इस्लाम की शब्दावली में सर्वाधिक श्रेष्ठ शब्द जिहाद है। जिहाद वह शब्द है, जिसका अंग्रेजी में अनुवाद नहीं किया जा सकता है, किंतु व्यापक रूप से कहें, तो इसका अर्थ 'लड़ना', 'संघर्ष करना', अल्लाह के हेतु अथवा उद्देश्य के लिये आगे बढ़ने का प्रयास करना है।

इस्लाम की शिक्षा के अनुसार मनुष्य खलीफा तूल-अर्द के रूप में भेजा गया है, जिसका आशय यह है कि वह धरती के उत्तराधिकारी होने की भूमिका के निर्वहन के लिये लाया गया है। धरती की अपनी क्षमताएं हैं और इसे भी एक उद्देश्य से रचा गया है। किंतु मनुष्य को उत्तरदायी प्राणी के रूप में भेजा गया है और उसका आस्तित्व यहां धरती का सुधार सुनिश्चित करने, भूरी धरती को पूरा का पूरा अल्लाह के हरे रंग में रंगने के लिये हैं। वह यहां शैतानी ताकतों द्वारा जो कुछ भी विकृत किया गया है, उनको व्यवस्थित व उनमें सुधार लाने के लिये है।

आगे बढ़ने के लिये ये सब ऊर्जावान प्रयास उस समय मनुष्य के लिये स्पष्ट रूप से वांछित हैं, जब दो विरोधी आचार-व्यवहार की क्रियाविधियों में से वो विकल्प तैयार किये जाने हों, जिसे तैयार करने के लिये हमारा अंत:करण कहे। जिस संसार में हम रहते हैं, वह वो क्षेत्र है जहां अच्छा और बुरा, सही और गलत, हक व ना-हक (सत्य व असत्य) तथा हलाल व हराम (वैध व निषेध) आचार-व्यवहार के मध्य संघर्ष है। जब मनुष्य संकल्पबद्ध रूप से उस आचार-व्यवहार की क्रियाविधि को चुनता है, जो अल्लाह द्वारा आकाशवाणी के माध्यम से घोषित किया गया है तो वह विधि का पालन करता है; मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह अच्छाई को चुने और बुराई को अस्वीकार कर दे। इस कर्तव्य का पालन उतना सरल नहीं है। यह अपनी निम्न प्रवृत्ति के साथ संघर्ष है। इसे जिहाद बिन-नफ़्स (स्वयं से संघर्ष) कहा जा सकता है और कहा गया है। साथ ही जब एक मोमिन देखता है कि कोई व्यक्ति दूसरे मोमिन को अल्लाह की राह पर जाने में बाधा उत्पन्न कर रहा है, तो जिहाद की भावना यह मांग करती कि जो व्यक्ति ऐसी बाधा उत्पन्न कर रहा है, उसे ऐसा करने से रोका जाए तथा उसके द्वारा उत्पन्न बाधा को हटाया भी जाए, जिससे कि मानव जाति स्वतंत्र रूप से उस पथ को पकड़ सकने में समर्थ हो, जो अल्लाह की ओर जाता है। यदि हम उस मोमिन के पथ की बाधा हटाने अथवा उस पथ को निष्कंटक बनाने का प्रयास नहीं करके प्रतिघात-संचालक ताकतों द्वारा अल्लाह पर अपने विश्वास को बनाये रखना चाहने वाले मोमिन की राह में अवरोध उत्पन्न करने वालों के प्रति निष्क्रिय मूकदर्शक बने रहते हैं तो ऐसा न करना आपराधिक भूल है, ।

मानव जाति प्रतिशोध लेने अथवा अधिक भूभाग या धन प्राप्त करने की लालसा को संतुष्ट करने की अपनी इच्छा को पूरा के लिये जो सामान्य युद्ध लड़ रही है, उसकी अनुमति इस्लाम में नहीं है। ऐसा इस कारण है, क्योंकि नियम यह है कि सभी प्रयास अल्लाह के लिये और अल्लाह का प्रताप, प्रभुत्व व उसके नाम की निर्मलता बनाये रखने के उद्देश्य के लिये होने चाहिए। जंग में इस्लामिक विधि का सिद्धांत धरती पर अल्लाह के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने का बीड़ा उठाने की प्रकृति वाला है तथा सदा इसका लक्षण सदैव रक्षात्मक होता है। अल्लाह के संदेशों को आगे बढ़ाना और अच्छे ढंग से अपने सह-नागरिकों के संज्ञान में लाना एक मोमिन का कर्तव्य है। किंतु यदि कोई उसे ऐसा करने में बाधा उत्पन्न करता है, तो रक्षा के उपाय के रूप में उसे प्रतिघात करने का अधिकार है। इसलिये और स्पष्टता से कहें ,तो इस्लाम में जंग की समस्या एक अधिपति इच्छा से नियंत्रित होती है। नामानुरूप यह अधिपति इच्छा अल्लाह को प्रसन्न करने वाली होती है और यह उन लोगों के विधिक हितों की रक्षा करने वाली होती है, जो अल्लाह में विश्वास करते हैं और जिन्हें अपने उन कर्तव्यों के पालन की अनुमति नहीं मिल रही होती है जिनका पालन उनके मजहब के अनुसार आवश्यक है।

जहां तक पवित्र कुरआन का संबंध है, तो इसमें बहुत सी आयतें हैं, जिनमें जिहाद की अवधारणा पर प्रकाश डाला गया है। पवित्र कुरआन की इन आयतों में से एक में स्पष्ट रूप से कहा गया है: "जिन्होंने हमारी राह में प्रयास (जाहिदू-फिना) किया, उन्हें हम मार्ग अवश्य दिखायेंगे" (अध्याय- 29:69)। इन सबका स्पष्ट आशय है कि जिहाद सत्य की खोज का एक साधन भी है, यह वह जानने का ढंग है कि मनुष्य को विधि का पालन करने के लिये क्या करना चाहिए। ज्ञान का अन्वेषण भी जिहाद का एक पक्ष है और इसे जिहाद-ए-अकबर की श्रेणी में रखा गया है, जिसका अर्थ है कि यह जिहाद बिल-सैफ (तलवार से जिहाद) जिसका वर्णन छोटे स्तर पर जिहाद अर्थात जिहाद-ए-अशगर के रूप में होता है, से प्रति-उत्कृष्ट रूप में बड़ा संघर्ष माना जाता है।

इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि इस्लाम में विजेता की व्यक्तिगत इच्छा, सत्ता की लालसा व व्यक्तिगत ख्याति की इच्छा पूर्णत: अप्रासंगिक है। जब वह अल्लाह के नाम में लड़ता है, तो वह अल्लाह की विधि व उसके नाम को परिपुष्ट करने तथा मोमिनों के विधिक हितों की रक्षा के लिए ऐसा करता है। केवल परिभाषित परिस्थितियों में ही जंग की अनुमति है। जैसा कि कोई भी देख सकता है कि यह अति नियंत्रित प्रकरण होता है; और वास्तव में यह विधि द्वारा नियमित होता है।

इस्लामी विधि जंग की घोषणा एवं इसके संचालन पर लागू सीमाओं का भी नियमन करता है। परीक्षण करने पर पता चलता है कि इस्लामी विधि न्याय के आदर्श को प्रोत्साहित करने के लिये गढ़ा गया है। अध्याय 2 की आयत 190 में हमें संदर्भ मिलता है, "अल्लाह की राह में उनसे लड़ो जो तुमसे लड़ते हैं और सीमाएं न लांघो। अल्लाह को वो प्रिय नहीं लगते जो सीमा लांघते हैं।" यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि मोमिनों के लिये दिशानिर्देश है कि वे केवल उनसे लड़ें जो उनसे लड़ते हैं। इस प्रकार मोमिन को आक्रामक होने की अनुमति नहीं है।

चूंकि अल्लाह को वे निश्चित ही प्रिय नहीं होते, जो आक्रमणकारी हैं, अतः इस प्रसंग में प्रयुक्त शब्द 'तुम' मोमिन के समग्र तन की ओर संकेत करता प्रतीत होता है और इसका भाव यह है कि इस्लाम में जंग सम्पूर्ण है, इस कारण जो भी मोमिन है उसे जंग छेड़ने में अपना योगदान देना होता है।

मुसलमान जब जंग में लगे हों, तो उस सीमा को पार नहीं सकते, जो जंग छेड़ने के लिये निर्धारित है तथा सैद्धांतिक रूप से उन्हें क्रूर अथवा प्रतिशोधात्मक नहीं हो सकते। न्यायसंगत व निष्पक्ष होने का सार्वभौमिक परमादेश अध्याय 5 के आयत 8 में दृष्टिगोचर होता है:

"हे ईमान वालो!

अल्लाह के लिए दृढ़तापूर्वक खड़े रहने वाले, न्याय के साथ साक्ष्य देने वाले रहो

तथा दूसरों की घृणा स्वयं पर इस प्रकार प्रभावी न होने दो कि गलत की ओर चले जाओ और न्याय न कर सको।

न्यायप्रिय बनो, जो अल्लाह और मजहब को प्रिय है, अल्लाह से डरो। निःसंदेह तुम जो कुछ करते हो, अल्लाह उसे भली-भांति जानता है।"

तत्पश्चात, इस्लाम के प्रथम खलीफा अबू बक्र द्वारा निर्गत वो प्रसिद्ध दिशानिर्देश हैं, जो इस्लाम की विधि के दृष्टिकोण के उदारवादी व मानवीय भावना को प्रदर्शित करते हैं। उन्होंने कहा, "स्मरण रहे कि तुम सदा अल्लाह की दृष्टि में हों। तुम्हारी मृत्यु की पूर्व संध्या पर; तुम्हें कयामत के दिन लेखा-जोखा देना होगा... जब तुम अल्लाह के प्रताप के लिये लड़ रहे हो, तो मैदान से भागे बिना पुरुष के जैसा व्यवहार करो, किंतु औरतों, बच्चों व वृद्धों के रक्त से अपनी जीत को कलंकित न होने दो।

खजूर के पेड़ों को नष्ट न करो; घरों या गेहूं के खेतों को न जलाओ; फलों के वृक्षों को मत काटो; पशुओं को तभी काटो जब तुम्हें भोजन की आवश्यकता हो। जब कोई संधि करो, तो उसके सभी उपबंधों को मानने पर ध्यान दो। जब तुम आगे बढ़ रहे हो और ऐसा कोई मजहबी व्यक्ति मिलता है, जो खोहों में रहता है और जो अल्लाह की इबादत कर रहा होता है: तो उन्हें अकेला छोड़ दो, उनकी हत्या मत करो या उनके खोहों को नष्ट मत करो।"

रसूल के अनेक दृष्टांत हैं, जो इस प्रकार की घोषणाएं करने में प्रामाणिक पक्ष हैं। (विशेष रूप से देखें मोहम्मद हमीदुल्लाह की मुस्लिम कंडक्ट आफ स्टेट, लाहौर 1968, पृष्ठ 204)। यह दृष्टिगोचर होगा कि जंग में लड़ाकों की नैतिकताओं के मानवीयकरण पर प्रभाव डालने वाली ये घोषणाएं उस समय की गयीं, जब बर्बर सुल्तानों ने युद्ध के मैदान में अपनी तलवारें गाड़कर सभी शत्रुओं के नरसंहार का आह्वान किया था। किंतु इस्लाम में जंग केवल अल्लाह के प्रभुत्व को स्थापित करने के लिये तब छेड़ा जाता है, जब अल्लाह की इच्छा को न स्वीकारने वालों तथा मानव जाति की रचना के उद्देश्यों के विरुद्ध कार्य करने वालों को समझाने के अन्य सभी उपाय विफल हो जाएं। वास्तव में कोई व्यक्ति जो पवित्र जंग की ओर जाता है, तो एक प्रकार से वह अपने जीवन के सबसे मूल्यवान वस्तु को त्यागकर अल्लाह की विधि के प्रभुत्व व सर्वश्रेष्ठता के संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत कर रहा होता है। यह उन लोगों के लिये पवित्र कुरआन में वर्णित उन मानदंडों के प्रति निष्ठा दिखाने जैसा होता है, जो अपने अल्लाह की कृपा प्राप्त करने एवं न्यायपरायणता ओर जाने की इच्छा रखते हैं। कुरआन कहता है: "जब तक तुम वो सब नहीं त्यागोगे जो तुम्हें सर्वाधिक प्रिय है, तुम न्यायपरायणता की ओर नहीं जा पाओगे।" वास्तव में "जंग का नारा शहीद", जिसे मोटे रूप में जंग में मृत्यु के रूप में लिया जाता है, अक्षरशः इस विचार को महत्वपूर्ण बनाता है कि एक साक्षी के रूप में उसके पास साक्ष्य है कि अल्लाह की विधि सर्वोपरि है और जो कोई भी अल्लाह के मार्ग पर जाने वालों की प्रगति में बाधा उत्पन्न करेगा उससे कठोरता से निपटा जाएगा। क्योंकि धरती पर अल्लाह के प्रभुत्व को बनाये रखने और पुनर्स्थापित करने का यही एकमात्र उपाय है। ठीक इसी प्रकार कुरआन के अध्याय चार की आयत 75 में वर्णित है। हमें चेताया गया है कि हमें उन सबको बचाना ही चाहिए, जो अत्याचारी शासकों द्वारा सताये जा रहे हैं। वास्तविक अंश निम्नलिखित है:

"और तुम्हें क्या हो गया है कि अल्लाह की राह में जंग नहीं करते,

जबकि कितने ही निर्बल पुरुष, स्त्रियां और बच्चे हैं, जिनके साथ बुरा व्यवहार हुआ है, (और जो सताये गये हैं)

जो गुहार रहे हैं कि हे अल्लाह! हमें इस भूमि से उबारें, जिसके निवासी अत्याचारी हैं

और इनमें से किसी को किसी को हमारा रक्षक बनाकर भेजें

जो हमें बचायेगा

जो हमारी सहायता करेगा"

व्यापक रूप से कहें तो संघर्षरत किसी मुसलमान फौज के लिये जंग का लक्ष्य सूरा मुहम्मद की आयत एक और चार में बताया गया है:

''जिन लोगों ने अल्लाह की राह में कुफ्र (अविश्वास) किया तथा अल्लाह की राह से रोका, अल्लाह ने उनके कर्मों को व्यर्थ (निष्फल) कर दिया.... तो जब काफिरों को पाओ तो उनकी गर्दन उड़ा दो, यहां तक कि जब उन पर नियंत्रण कर लो तो उन्हें दृढ़ता से बांध दो। फिर उसके बाद या तो उपकार करके छोड़ दो या फिरौती (धन) लेकर। यहां तक कि काफिर अपने हथियार डाल दें तो भी।''

इस्लाम विश्व को दो विपरीत ध्रुवों में देखता है। एक ध्रुव है दारुल-इस्लाम और दूसरा ध्रुव है दारुल-हर्ब। दारुल इस्लाम अल्लाह के प्रति निष्ठा रखता है और शांति, व्यवस्था व मानव के विकास के अन्य अनुबंधों की स्थापना के लिये अल्लाह द्वारा निश्चित किये गये मार्ग में सहयोग करता है, जबकि दारुल-हर्ब अल्लाह के आदेशों की अवज्ञा के अपराध में संलिप्त रहता है। इस प्रकार का कोई भी प्रकरण जिसमें कोई अल्लाह की इच्छा के विरुद्ध विद्रोह करता है, ''फ़ित्ना'' कहा जाता है, जिसका शाब्दिक अर्थ परीक्षा अथवा सुनवाई है। ''फ़ित्ना'' शब्द किसी व्यक्ति की ओर से उस दुर्व्यवहार का संकेत करता है, जो कि उस व्यक्ति ने आचार और व्यवहार के अपने मानदंड बना लिये हैं और चाहता है कि अन्य व्यक्ति भी उसी मानदंड पर चलें। इस प्रकार वह व्यक्ति एकमात्र प्रभुत्वशाली अल्लाह के प्रभुत्व को हड़प रहा होता है। सूरा अल-अन्फाल के अध्याय 8 की आयत 39 में कहा गया है, ''और हे ईमान वालो! उनसे उस समय तक जंग करते रहो, जब तक कि फ़ित्ना समाप्त न हो जाए और सब के सब अल्लाह की शरण में न आ जाएं।''

सूरा तौबा की आयत 9 में भी इसी प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया गया है, ''उनसे जंग करो जो अल्लाह, कयामत को नहीं मानते हैं, जो अल्लाह व उसके रसूल द्वारा हराम बताये गये कार्य करते हैं और जो अल्लाह की पुस्तक को मानने वाले लोगों के सत्य मजहब को नहीं मानते। ऐसे लोगों से तब तक जंग करते रहो, जब तक कि वे झुक न जाएं, जजिया न दें और स्वयं को पराजित, अपमानित न अनुभव करें।''

बहुत से पश्चिमी विद्वानों ने कुरआन की उपरोक्त आयतों पर उंगली उठाते हुए आरोप लगाया है कि इन आयतों से यह भाव उत्पन्न होता है कि इस्लामी दुनिया अ-मुस्लिमों के विरुद्ध अंतहीन जंग लड़ने रहने वाली स्थिति में रहे।

यदि किसी को इसका उत्तर देने की आवश्यकता हो, तो इतना कहना पर्याप्त है कि जो अल्लाह का दास है, उसका अल्लाह के प्रभुत्व की अवज्ञा करना यह प्रकट करता है कि इस्लामी विधि के परिप्रेक्ष्य में उस दास पर राजद्रोह का अपराधी ठहराये जाने का जोखिम है तथा ऐसे व्यक्ति के साथ यह मानकर व्यवहार किया जाना चाहिए कि वह उस मानवता के तन पर कैंसर जैसा बढ़ता हुआ कोई रोग है, जिसकी रचना ''कनाफसीन वहीदतीन'' हुई है। ''कनाफसीन वहीदतीन'' का अर्थ है एक, अकेला, अविभाजित रचना। इस प्रकार मानवता के शेषभाग को बचाने के लिये कैंसर कोशिकाओं को हटाना आवश्यक हो जाता है, भले ही (यदि कोई अन्य उपचार काम न आये तो) इसके लिये सर्जरी का साधन अपनाना पड़े।

इस्लाम में मोमिन का कर्तव्य है कि वह अपनी समझाने की सामर्थ्य का उपयोग कर काफिरों (अ-मुस्लिमों) को इस्लाम में लाने तथा उनको आमंत्रण भेजने में सुंदर ढंग का उपयोग कर इस्लाम स्वीकार करने का बुलावा भेजे। इस्लाम में प्रथम कर्तव्य दावा (धर्मांतरण) का आमंत्रण देना है। कुरआन द्वारा इस्लाम के रसूल का भी वर्णन 'अल्लाह की ओर बुलाने वाले' अर्थात ऐसा व्यक्ति जो अल्लाह के आदेश से अल्लाह की राह में लोगों को बुलाने के लिये भेजा गया है।'' इस प्रकार प्रत्येक मोमिन में सबसे पहले लोगों को धर्मांतरण के लिये अच्छे ढंग से बुलाने का गुण झलकना चाहिए और विशेषकर उन लोगों को इस्लाम की ओर बुलाने के लिये जिन्हें वह धरती पर अपकार करते हुए लोक व्यवस्था भंग करता पाता है। ऐसे लोगों को कुमार्ग छोड़ने और सत्य के पथ पर लौटने के लिये आमंत्रित किया जाता है। जब वे दावा स्वीकार करने से मना कर दें, इस्लाम की दुनिया से संघर्ष करने के लिये बड़ी सेना तैयार करें, मुसलमानों से लड़ने के लिये स्वयं को शस्त्रों से सुसज्जित करें तथा ऐसी परिस्थिति हो कि अल्लाह की विधि को स्वीकार

किये जाने से मना किया जाए, तो मोमिनों के पास ऐसे लोगों के विरुद्ध जंग छेड़ने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचता है, जो आक्रमण की धमकी दे रहे हों।

क्योंकि यही अपील का अंतिम न्यायालय है, जहां सही और गलत के बीच प्रकरणों का अंतिम निपटारा किया जा सकता है। जो सही है, उसकी रक्षा में जंग छेड़ने का औचित्य यह है कि जो सही के पक्ष में है यदि वो शुद्ध मंशा से जंग में जाता है तो जिसने अल्लाह के कानून की अवज्ञा करके वास्तव में धरती पर अव्यवस्था उत्पन्न की है, उस पर विजय प्राप्त करने में अल्लाह द्वारा उसकी सहायता की जाती है-क्योंकि अल्लाह को कुचेष्टा करने वाले अच्छे नहीं लगते।

यह सत्य है कि आधुनिक समाज में अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था एवं मानव जाति के अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में शांति बनाये रखने के लिये राष्ट्र-राज्यों की प्रभुत्वसम्पन्न समानता के आधारों पर चलना होता है। इन राष्ट्र-राज्यों की संख्या वर्तमान में 151 है और यह संख्या यहां तक आधुनिक राष्ट्र-राज्यों के ढांचे के क्षेत्रीय पक्ष को ध्यान में रखते हुए पहुंची है। इस्लाम के रसूल मुहम्मद की उम्मा का विचार क्षेत्रीय राज्यों की रूपरेखा के भीतर समझे जाने योग्य नहीं है, इस कारण विश्व को इस्लाम की दुनिया और जंग की दुनिया के बीच द्विध्रुवीय देखने का स्थायी आधार बहुत कम बन पाया है। मेरी समझ से इस्लाम क्षेत्रीय राज्य की अवधारणा को ग्रहण नहीं करता है। यह स्मरण किया जाना चाहिए कि इकबाल ने भी अपने "इस्लाम में मजहबी विचारों के पुनर्गठन" नामक व्याख्यान में सुझाव दिया है कि प्रारंभ में मुसलमान राज्य के साथ भी क्षेत्रीय राज्य जैसा व्यवहार किया जाए और ऐसा व्यवहार अंतरिम उपाय समझकर किया जाए, क्योंकि बाद में इन सबको मुसलमान राज्यों के राष्ट्रमंडल में परिवर्तित किया जाना है। इससे पूर्व इनमें से प्रत्येक राज्य को पहले बल व स्थायित्व प्राप्त करना है, जिससे कि वे वह आधार तैयार करने में समर्थ बन सकें, जिस पर कि इस्लाम का संघीकृत राज्य ऐतिहासिक परिदृश्य में आ सके।

वर्तमान विचारों के प्रसंग में तीन शब्द ऐसे हैं, प्राय: जिनका प्रयोग भेदभावपूर्ण ढंग से किया जाता है और जिनसे समकालीन इस्लामी विचार में बड़ा असमंजस उत्पन्न होता है। इन पर स्पष्टीकरण आवश्यक है। ये तीन शब्द हैं: (1) *उम्मा*; (2) *कौम*; और (3) *मिल्लत*। यह वो स्थान नहीं है जहां इन शब्दों के लिये दिये जा सकने वाले किसी ठीक-ठीक अर्थ की व्याख्या करने के लिये विस्तृत निबंध की आवश्यकता हो। किंतु यह कहना पर्याप्त होगा कि इन शब्दों में से प्रत्येक संश्लेषण अथवा समेकन के अनुप्रयोग का प्रस्फुटन है। *'कौम'* शब्द का सरोकार इसकी मूल क्रिया, *कौम याकूम* से है, जिसका अर्थ होता है खड़े होना। यह आवश्यक रूप से लोगों के उस समूह के महत्व को बताता है जो भौगोलिक सगोत्रता के सिद्धांत के प्रति आह्वान से एक राष्ट्र के रूप में गठित होता है, अर्थात यह उन लोगों के समूह से एक राष्ट्र के रूप में आकार पाता है, जो भूमि के किसी परिभाषित भाग के साथ प्रादेशिक संबंध रखते हैं। *'मिल्लत'* शब्द प्राथमिक रूप से *मिल्लत-ए-इब्राहीमी* से जुड़ा हुआ है, जो अपनी व्यापकता में अधिक प्रजातीय है। यह इस भाव में है कि संश्लेषण का सिद्धांत यहां रक्त अथवा सगोत्रता का बंधन है। या यूं कहें कि वो जिनकी धमनियों में प्रवाहित रक्त एक ही गुण का है, वे एक राष्ट्र का गठन कर सकते हैं। उदाहरण के लिये यहूदी स्वयं को "बनू इजराइल" कहते हैं और इस आधार पर वे एक राष्ट्र हैं। भले ही वे निर्जनता में यहां-वहां भटक रहे हैं और उनका कोई निर्धारित वास नहीं है, किंतु वे स्वयं को एक राष्ट्र के रूप में मानते हैं, क्योंकि उन्होंने एक ही पूर्वज से अपनी उत्पत्ति को ढूंढ़ लिया है। शब्द *उम्मा* इस्लाम के रसूल के *उम्मा* से जुड़ा है और यह मूल शब्द जननी से जुड़ा है। यहां जननी-सिद्धांत पवित्र कुरआन की उस प्रसिद्ध आयत से समझाया जाना चाहिए जो कहता है: *"मा कना मोहम्मदन अबा अहदीन मिन रजाली कुम वला किन रसूल लुल्लाह वा खतमुनीबियीन"*। इसका अर्थ है कि मुहम्मद किसी एक का पिता नहीं है, पर वह अल्लाह का रसूल है (जो अल्लाह द्वारा भेजा गया) और वह सभी रसूलों में मुहर अर्थात अंतिम है। यदि मुहम्मद किसी एक व्यक्ति का पिता नहीं है, तो वो संदेश जो वह लाया और अपने अनुकरणीय आचरण का जो आदर्श वह छोड़कर गया है, कोई भी मोमिन उत्तराधिकार में इनके अतिरिक्त उससे कुछ और नहीं पायेगा। अल्लाह द्वारा अपनी आयतों को उमीयीन को सुनाने, उन्हें शुद्ध करने तथा उनका भाग्य संवारने एवं उन्हें ज्ञानवान बनाने के लिये उसे उमीयन में से चुनकर भेजा गया है (देखें सूरा जुमा आयत)। चूंकि पैगम्बरी की वह प्रक्रिया जो अनंत काल से चली आ रही थी उस पर अल्लाह ने अंतिम होने की मुहर लगा दी

है, इसलिये अल्लाह द्वारा डाले गये कर्तव्यों को पूरा करने के लिये उसने जो कुछ किया है और उसके द्वारा लाये गयै 'उमुल-किताब' में जो संदेश हैं, वो आने वाले समय में अनंत काल तक सम्पूर्ण मानवजाति की धार्मिक मार्गदर्शिका रहेंगे।

यही कारण है कि उसे कुरआन में कहीं *रफतिलीनास* कहा गया है, क्योंकि कोई भी देख सकता है कि उम्मा विचारों, विश्वासों व परंपराओं के एक निश्चित प्रारूप में सहभागी होती है तथा ब्रह्मांडीय इतिहास के इस उद्यम में मजहबी भागीदारी के कारण उम्मा मानवजाति की समेकता का आध्यात्मिक सिद्धांत प्रदान करती है। यह वो सिद्धांत है जो राष्ट्र से ऊपर, प्रजाति से ऊपर, भाषा से ऊपर व क्षेत्र से ऊपर है। इस प्रकार मनुष्य अल्लाह की राह में जंग करने वाले के रूप में माना जाता है और जो भी इस अभियान में भाग लेते हैं, वे (फी दीनील्लाह अफ्वजा) मानवता के ऐसे दूध के मजहबी भंडारण से पोषण लेते हैं जिसे देने में केवल एक मजहबी मां ही समर्थ होती है। मुसलमानों के लिये यह समझना महत्वपूर्ण है कि वे अभी भी मुसलमान आदर्श से कितने दूर हैं और जब तक वे अल्लाह की रस्सी को नहीं पकड़ेंगे एवं अपनी आंतरिक फूट को समाप्त नहीं करेंगे, इस्लाम की दुनिया को एक उम्मा के रूप में नहीं देख पाएंगे। उन्होंने अल्लाह के जो संदेश व रसूल की परंपरा-आचरण (सुन्नत) को अपने रसूल से उत्तराधिकार में प्राप्त किया है, उसे धरती पर फैलाना ही उनकी भूमिका है। यदि कोई ऐसा है जो उनके प्रयासों को दबाता है तथा उस संदेश के प्रसार में बाधा उत्पन्न करता है तो उसे दारुल-हर्ब का सदस्य माना जाएगा और ऐसे व्यक्ति के साथ निपटा जाएगा और इसके लिये वह व्यक्ति स्वयं ही उत्तरदायी है। चूंकि मोमिन का आदर्श वाक्य ''ला इक्रहा फिद्दीन'' है, तो इस्लाम में धर्मांतरण सुनिश्चित करने के लिये जंग मार्ग नहीं है। इस उद्देश्य के लिये और विशेष रूप से जो अल्लाह में विश्वास नहीं करते उन लोगों को ''दावा'' अर्थात धर्मांतरण का आमंत्रण दिये जाने तथा विधिक तर्कों का प्रयोग व प्रकरण को सुंदर ढंग से प्रस्तुत कर इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये निर्देशित किया गया है।

इस्लाम में जंग व शांति का कानून उतना ही पुराना है, जितना कि कुरआन है। वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय विधि के लिये मुसलमान न्यायविदों द्वारा प्रयुक्त शब्द सय्यार है, जो सीरत का बहुवचन है और यह बताता है कि राज्य द्वारा अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा विनियमित दूसरे राज्य से संबंधों को लेकर क्या कूटनीति व आचरण हो। इस्लामी अंतर्राष्ट्रीय कानून में कोई राष्ट्र मानकर नहीं, वरन् इस्लामी परिप्रेक्ष्य में रखकर मुस्लिम व अ-मुस्लिम मानकर उनके बीच संबंधों को विनियमित किया जाता है। यद्यपि आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय विधि जो कि इस्लाम से महत्वपूर्ण रूप में प्रभावित है, में यह संबंध कुल मिलाकर एक भिन्न आधार पर निर्धारित किया जाता है। यह एक ऐसा कानून है जो प्रभुत्वसम्पन्नता की समानता के आधार पर सभी राष्ट्रों के आचरणों को विनियमित करता है। इस्लाम में निश्चित मत है कि कोई राष्ट्र प्रभुत्वसम्पन्न नहीं है, क्योंकि केवल वह अल्लाह ही एकमात्र प्रभुत्वसम्पन्न है और उसी में सभी प्राधिकार अंतर्निहित हैं।

इससे पूर्व कि मैं जंग और शांति की समस्याओं से संबंधित व विचारित इस्लामी कानून के विशेष पक्षों व लक्षणों के संक्षिप्त सर्वेक्षण के निष्कर्ष पर पहुंचूं, मार्सल ए. बोइसर्द द्वारा कुछ समय पूर्व ''इस्लाम में शत्रुता का आचरण एवं सशस्त्र संघर्ष के पीड़ितों की सुरक्षा'' शीर्षक से लिखे गये आलेख को संदर्भित करना चाहता हूं। यह लेखक जिनेवा के ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज के कूटनीति प्रशिक्षण कार्यक्रम के सह-निदेशक हैं। उन्होंने उच्च मानवीय गुणों के विधिक नियमों के मूल पक्षों को सारांश रूप में बिंदुवार सूचीबद्ध किया है, जो निम्नलिखित है:

1. ''सशस्त्र शत्रुता व्यवस्थाओं का विरोध करती है, न कि व्यक्तियों का, अत: जहां तक कि सैन्य आवश्यकताएं अनुमति दें, उन व्यक्तियों को छोड़ दिया जाए;
2. किसी भी प्रकार की अति यथा शत्रु पर क्रूरता व अनावश्यक आघात करना, कपटपूर्ण साधनों का प्रयोग करना तथा सामूहिक व अंधाधुंध विध्वंस के हथियारों का प्रयोग करना पूर्णतः प्रतिबंधित है;
3. जो मूल मानवीय सिद्धांतों का उल्लंघन करते हों, वैसी प्रतिहिंसा की अविधिकता,;

4. लड़ाका और अ-लड़ाका में भेद। जो अब युद्ध में लिप्त नहीं हैं, मृतक, घायल या बंदी हैं उनका तथा चिकित्सा व आपूर्ति कार्मिकों का सम्मान करना;
5. व्यक्तिगत उत्तरदायित्व की स्वीकृति-मूल स्वयं-सिद्ध प्रमाण, विशेष रूप से मुस्लिम विधि के विषय में-सामूहिक दंड देने एवं बंदी बनाने की अनुमति नहीं होना लागू करना;
6. बंदियों के साथ उचित व्यवहार; यह सुनिश्चित करना कि उनके प्राण नहीं लिये जाएंगे और वे यथाशीघ्र मुक्त किये जाएंगे;
7. मानवीयता की परियोजनाओं पर शत्रु के साथ सहभागिता;
8. अंत में, इस स्तर पर यह ध्यान दिया जाए कि उपरोक्त नियम "आंतरिक" संघर्ष के प्रकरण में भी बाध्यकारी होने चाहिए। विद्रोही स्वत: ही विधिक रूप से मान्यता का अधिकार रखते हैं और अपने युद्ध के कृत्य से मृत्यु व विध्वंस के उत्तरदायी नहीं माने जाते हैं।"

उपरोक्त नियमों को सारांश रूप में लिखने के बाद ये विद्वान लेखक इस्लामी अंतर्राष्ट्रीय कानून के नियमों के प्रबंध पर विचार करते हुए उन नियमों की समग्रता व उत्कृष्टता की सराहना करते हैं। उनके शब्दों में:

"यह सूची दर्शाती है कि मुस्लिम जंग कानून के मूलभूत आधारतत्व विशेष रूप से प्रासंगिक, पुनरावर्ती और कभी-कभी तो अपने तत्वों में हेग व जिनेवा सम्मेलन के नियमों से भी अधिक आगे जाते हुए दिखते हैं। हमने उनका वर्णन उनकी सकारात्मक परंपरागत गठन एवं विकास की प्रारंभिक अवस्था में किया है तथा इस प्रकार विधि व धर्म की सम्पूर्ण पहचान वाली इस प्रणाली की अर्थव्यवस्था के आवश्यक कारकों पर बल नहीं दिया है। चूंकि एक मुसलमान के लिये व्यक्ति के रूप में उत्तरदायित्व निश्चित हैं, इसलिये यदि वह नियमों का उल्लंघन करेगा तो स्वयं ही संभवत: सांसारिक और निश्चित रूप से अल्लाह के दंड का भागी बनने योग्य अपनी कमियां उजागर करेगा। शाश्वतता व सापेक्षता के के दोहरे परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत हमने दूसरे पर ध्यान केंद्रित किया है। यद्यपि यह एक मोमिन की दृष्टि में कम महत्वपूर्ण है। मजहब के स्रोतों व रसूल के दृष्टांतों से अपने अनुमान के मार्गदर्शी सिद्धांत ढूंढ़ने वाले विधिवेत्ताओं ने बहुत पहले द्वितीय/8वीं और तृतीय/9वीं शताब्दी में ऐसे आदेशात्मक मानदंड स्थापित कर दिये थे, जिन्होंने आंतरिक व अंतर्राष्ट्रीय संघर्षों का विनियमन किया। यह उनको स्मरण कराने के योग्य है कि वे न केवल समकालीन मुस्लिम दुनिया में कुछ राजनीतिक नेताओं के लिये, अपितु हिंसा के समय में मानवाधिकारों की रक्षा, हथियार सीमा और सशस्त्र संघर्ष की अंतर्राष्ट्रीय मानवीय विधि की स्वीकृति पर विभिन्न कूटनीतिक सम्मेलनों में भाग लेने वाले लोगों के लिये भी प्रेरणादायी हो सकते हैं।

वास्तव में मुसलमान इन नियमों को अल्लाह का नियम होना मानता है और यहां तक कि बाहर के अधिकांश सशंकित प्रेक्षक भी यह मानते होंगे कि ये नियम थोड़े-बहुत शाश्वत भी हैं।"

मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह पुस्तक इस्लामी जंग कानून में रुचि जगायेगी और विशेष रूप से इस विचार पर पर्याप्त बल देगी कि इस्लाम का मजहब शत्रुता के नियमों को कानून से तैयार करता है। ब्रिगेडियर मलिक ने अत्यंत कष्ट सहकर यह पुस्तक तैयार की है, जिससे कि इस्लाम में जंग की अवधारणा को ठीक ढंग से समझा जा सके। इसके लिये मैं उनके प्रति हृदय से आभार प्रकट करता हूं। अल्लाह की दृष्टि में उनके कार्यों की सराहना हो और अल्लाह उन्हें आगे बढ़ाये, (आमीन)।

76 मोसकाबाद, कराची

अल्लाह बक्श के. ब्रोही

लेखक की टिप्पणी

पवित्र कुरआन मानवजाति के लिए शाश्वत मार्गदर्शन का स्रोत है। इसकी निधियां उन सभी के लिये उपलब्ध हैं, जो शुद्धता के साथ ढूंढ़ते हैं। जब मनुष्य समझने का प्रयास करता है, तो यह पुस्तक स्वयं को उसके समक्ष प्रकट करना प्रारंभ कर देती है। उसके मन-मस्तिष्क पर अल्लाह के इस उदात्त पत्रक का विज्ञान व तर्क छाने लगता है। इसमें प्रत्येक नयी खोज उसके विश्वास को सुदृढ़ करती है, उसके ज्ञान में वृद्धि करती है, उसके धार्मिक क्षितिज को विस्तार देती है तथा उसे अपनी जीवनचर्या को विनियमित करने का प्रकाश व मार्गदर्शिका प्रदान करती है।

यह पुस्तक बार-बार मनुष्य जाति का आह्वान करती है कि वह अपनी समझ व विवेक में बुद्धि व तर्क का प्रयोग करे। यह हमारा आह्वान करती है कि हम ज्ञान व सत्य के अनुसंधान में अपनी समस्त प्रज्ञा का पूर्ण उपयोग करें। यह मानव प्रेक्षण, अन्वेषण, अनुसंधान व शोध पर बल देती है। वास्तव में पवित्र कुरआन मानवजाति को इसका अध्ययन करने; इसके नियमों व सिद्धांतों पर मंथन करने; इसमें दिये गये अल्लाह के चिह्न का अन्वेषण व प्रेक्षण करने तथा इसके सिद्धांतों व दर्शन पर विचार करने का आह्वान करती है।

हमारी विफलताएं व कमियां पवित्र कुरआन का अनुसंधान करने में बाधा नहीं बननी चाहिए। मनुष्य प्रकृति से नाशवान व चूक करने वाला है; और यह पुस्तक निस्संदेह उदात्त व पूर्ण है तथा यह हम जैसे नश्वर मानव के लिये भेजी गयी है। उद्देश्य की प्रदत्त सच्चाई, जो कि पवित्र कुरआन द्वारा सुझाये गये मार्ग पर चलकर किया गया अनुसंधान है, वास्तव में सबमें सबसे सुरक्षित, सबसे निश्चित, सर्वाधिक ग्रहणकारी, सर्वाधिक पुण्यकारी, सारगर्भित व लाभकारी अनुसंधान है। इस पुस्तक में किया गया पथ-प्रदर्शन ठोस ईश्वरीय आधारों पर टिका है तथा फल देने की दीप्तिमान आशा व संभावना से भरा हुआ है।

जीवन की सम्पूर्ण संहिता के रूप में पवित्र कुरआन जंग का दर्शन भी प्रदान करती है।

अल्लाह का यह सिद्धांत कुरआन की समग्र विचारधारा का अभिन्न अंग है। यह एक ऐसा सिद्धांत है जो अपनी अवधारणा से लेकर निष्कर्ष तक अल्लाह के शब्दों से नियंत्रित व अनुकूलित होता है। मानव को जो भी सैन्य विचार ज्ञात हैं, उनमें से कोई भी ऐसी श्रेष्ठ विशेषताओं से युक्त नहीं हैं। इससे इसके बहुत से अन्य गुण निकलते हैं। यह समग्र, सम्पूर्ण, व्यापक, संतुलित, व्यवहारिक व प्रभावकारी है।

कुरआन के फौजी विचार का अध्ययन अनेक कोणों व दिशाओं से किया जा सकता है। इसमें से इसकी ऐतिहासिक, राजनीतिक, विधिसम्मत व नैतिकता संबंधी शाखाएं निकलती हैं। मुस्लिम फौजी इतिहास के तदंतर अध्ययन को सही परिप्रेक्ष्य में देखने के लिये इस प्रकार का अनुसंधान आवश्यक है। जंग के उन रहस्यों को उजागर करना आवश्यक है, जिनकी व्याख्या करने के लिये सदियों से मानव मस्तिष्क जूझ रहा है। जंग पर आसमानी (ईश्वरीय) सिद्धांतों व अवधारणाओं के समग्र व सम्पूर्ण विचार को प्राप्त करने के लिये यह कार्य किया जाना चाहिए। सबसे बढ़कर हमें इसकी असीमित कृपा का लाभ उठाने हेतु इसको समझना, ग्रहण करना और व्यवहार में लाना चाहिए।

यह पुस्तक पाठकों को इस विषय से परिचय कराने का विनम्र प्रयास है। पवित्र कुरआन पर अनुसंधान एक व्यक्ति का कार्य नहीं है। यह समस्त मुस्लिम उम्मा का सामूहिक व सतत् उत्तरदायित्व है। ज्ञान व बुद्धिमत्ता के कभी न समाप्त होने वाले इस भंडार में से एक 'बूंद' पाने के लिये भी जीवनभर शोध करना पड़ता है और ऐसी 'बूंदों' को सामूहिक रूप से एकत्र कर ही हम इससे अधिकतम लाभ उठा सकते हैं।

यदि यह विनम्र प्रयास उस 'बूंद' का एक अंश भी होने योग्य पाया गया तो मैं स्वयं को अत्यंत भाग्यशाली समझूंगा।

एस. के. मलिक

आभार ज्ञापन

मैं जनरल एम. जिया-उल-हक को कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने पुस्तक की पांडुलिपि को पढ़ने के लिये अपना सर्वाधिक मूल्यवान समय दिया और इसका 'आमुख' लिखने की स्वीकृति दी। श्रीमान ए.के. ब्रोही के प्रति कृतज्ञ व ऋणी हूं कि उन्होंने इस पुस्तक को तैयार करने में अपना उदार व स्नेहिल मार्गदर्शन दिया तथा इसका 'प्राक्कथन' लिखा।

मैं लेफ्टिनेंट जनरल ए.एल. अकरम के प्रति सम्मान व आभार प्रकट करता हूं कि उन्होंने पिछले अनेक वर्षों से मुझे प्रशिक्षित किया और मागदर्शन किया, जिससे कि मैं इस प्रकार के कार्य का बीड़ा उठा पाया। यह उनका उदारतापूर्ण व उचित मार्गदर्शन ही था, जिसने मेरे प्रयासों को आगे बढ़ाया और दिशा दी। मैं इस पूरी परियोजना में व्यक्तिगत रुचि लेने वाले मेजर जनरल सईद कादिर का अत्यंत कृतज्ञ व ऋणी हूं। मैं पंजाब विश्वविद्यालय के इस्लामी अध्ययन विभाग के अध्यक्ष डॉ अमन उल्लाह खान एवं आर्मी एजूकेशन कॉर्प्स के लेफ्टिनेंट कर्नल (पाकिस्तान मिलिटरी अकादमी के अंग्रेजी विभाग के पूर्व अध्यक्ष) शाहिद अहमद खान को भी उनके द्वारा दिये गये हितकर परामर्श व सहायता के लिये धन्यवाद ज्ञापित करता हूं।

मैं कर्नल शब्बीर हुसैन, गुलाम अब्बास एवं आर्मी सेंट्रल लाइब्रेरी के कर्मचारियों, लेफ्टिनेंट कर्नल गुलाम सर्वर एवं नेशनल डिफेंस कॉलेज लाइब्रेरी के कर्मचारियों,लेफ्टिनेंट कर्नल अब्दुल गफूर, लेफ्टिनेंट कर्नल क्यू. ए. बरलास तथा लेफ्टिनेंट कर्नल रियाज हुसैन, नायब सूबेदार सलीम हुसैन शाह, हवलदार मोहम्मद नवाज, हवलदार मोहम्मद सिद्दीकी, नायक अल्लाह दित्ता, लांस नायक मोहम्मद शरीफ को इस पुस्तक के पूर्ण करने के विभिन्न स्तरों पर दी गयी सहायता के लिये हृदय से धन्यवाद देता हूं।

मेरे दिवंगत सहकर्मी कर्नल रियाज अहमद इस कार्य में सहायता के लिये सदा तत्पर रहे। अल्लाह उनकी आत्मा को अपना प्रचुर आशीर्वाद प्रदान करे।

मेरे इस कार्य में मेरी बेटियों रोमाना, मासूमा व सायमा की सक्रिय बालसुलभ रुचि प्रेरणा व दृढ़ विश्वास का स्रोत रही। अल्लाह उन्हें इसका पुरस्कार दे और इतनी सामर्थ्य व समझदारी दे कि वे पवित्र कुरआन के मार्ग पर चल सकें।

अध्याय एक

परिचय

अल्लाह की पुस्तक कुरआन में जंग की अवधारणा पर समग्र विचार दिया गया है। यह पुस्तक अंतर-राज्यीय संबंधों में 'बल' प्रयोग के सभी पक्षों को परिभाषित और निर्धारित करती है। कुरआन में दिये गये आदेश जंग के उद्देश्यों व लक्ष्यों, प्रकृति व लक्षणों, सीमाओं व परिमाणों, आयामों व रोकथाम के रहस्य पर प्रकाश डालते हैं। यह पुस्तक रणनीति के अद्वितीय व विशिष्ट विचार को प्रकट करती है तथा जंग संचालन के नियम व सिद्धांत का निर्धारण करती है।

कुरआन में उल्लिखित जंग की अवधारणा निश्चित रूप से सर्वश्रेष्ठ व प्रभावकारी है। यह जंग और नीति के मध्य पूर्ण संतुलन स्थापित करती है। इसमें जंग के प्रारंभ, योजना, संचालन व नियंत्रण से जुड़े सभी विषयों को व्यवस्थित व विनियमित करने गहरी अंतदृष्टि निहित है। यह अवधारणा सुपरिभाषित ईश्वरीय नियंत्रण के अधीन संचालित होती है। यह सुनिश्चित करती है कि न तो निर्दिष्ट सीमा व उद्देश्यों से परे जाकर जंग की अनुमति दी जाए और न ही जंग को इष्टतम स्तर से नीचे रखा जाए। इसके कानून व सिद्धांत प्रकृति में सार्वभौमिक और महत्व में बाध्यकारी हैं। मानव-निर्मित सिद्धांतों के विपरीत ये न तो विशेष परिस्थितियों से निकला है और न ही यह इस विशेष उद्देश्य से बनाये गये हैं।

पवित्र कुरआन जंग की व्याख्या संकुचित राष्ट्रीय हित की दृष्टि से नहीं करती। यह सार्वभौमिक शांति व न्याय की अनूभूति की ओर इंगित करती है। कुरआन शांति व न्याय प्राप्त का उद्देश्य प्राप्त करने के लिये कार्य-प्रणाली उपलब्ध कराती है। यह कार्य-प्रणाली उचित व शांतिपूर्ण व्यवस्था को मिलकर स्थापित करने में अपने प्रतिद्वंद्वियों को सहयोग करने की अधिकतम संभावना प्रदान करती है। यद्यपि आलोचकों व समर्थकों दोनों की ओर से लक्ष्य-केन्द्रित व उद्देश्यपूर्ण शोध के अभाव के कारण यह प्रभावित हुई है। आलोचकों ने इसकी व्याख्या जोखिमवाद, विस्तारवाद और उन्मादवाद के पक्ष या रूप में व्याख्या की है। समर्थक भी अपेक्षाकृत इसके मजहबी व पारलौकिक पक्षों पर अतिशय केंद्रित रहे हैं और उन्होंने इसके व्यापक वैज्ञानिक व तार्किक पक्ष को उभारने का बहुत कम प्रयास किया है। अनुसंधान के प्रति यह उदासीनता जानबूझकर रही हो अथवा असावधानीवश, पर समय के साथ इसने हमें कुरआन के फौजी विचार को सही दृष्टि व परिप्रेक्ष्य में देखने से रोका है। भले ही इसने सामयिक प्रतिद्वंद्वी सैन्य अवधारणाओं व सिद्धांतों के बीच इसे पूर्णत: लुप्तप्राय नहीं बनाया, पर कम ग्राह्य तो बनाया ही है। वर्तमान समय के युद्धों की जटिलताओं का समाधान प्राप्त करने का प्रयास करने वाला आधुनिक सैन्य मस्तिष्क लगभग 1400 वर्ष पुराने इस सिद्धांत के अध्ययन की ओर कम ही आकर्षित होता है। उसे आधुनिक युद्ध और कुरआन के फौजी विचार की समस्याओं के मध्य अंतर इतना बड़ा और गहरा दिखता है, जैसे कि एक तीर हो और दूसरा परमाणु बम। परिणामस्वरूप, सामान्य रूप से मानवता और विशेष रूप से मुसलमान समुदाय इस सर्वश्रेष्ठ ईश्वरीय सिद्धांत की असीम कृपा व लाभ प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं।

अत: जंग की वर्तमान व भविष्य की समस्याओं का समाधान प्राप्त करने के लिये इस विषय में अनुसंधान को अद्यतन किये जाने की तात्कालिक आवश्यकता है। यह कार्य विकट प्रतीत होता है, किंतु ऐसा भी नहीं है कि यह न पार की जा सकने वाली चुनौती हो। यह कार्य अन्वेषण व अनुसंधान की कुरआन की विशिष्टताओं के पुनरुत्थान का आह्वान करता है। अतीत में उदात्त भावना से प्रेरित हमारे पूर्वजों ने विज्ञान व कला की अनेक शाखाओं में उल्लेखनीय योगदान दिया है। आधुनिक सैन्य विज्ञान के एक निष्ठावान व विशुद्ध विद्यार्थी के लिये कुरआन का जंग का सिद्धांत भी अनुसंधान के लिये उतना ही समृद्ध व परिणाममूलक क्षेत्र प्रस्तुत करता है। वास्तव में यह आज की अपरिहार्य मांग है। इसमें अन्य विशेषताओं के साथ ही इस पीड़ित संसार में सताये गये लोगों के लिये एक आशा व आश्वासन का संदेश भी है।

अवधारणा में ईश्वरीय, जंग का यह कुरआन का सिद्धांत उद्भव में विकासमूलक तथा अनुप्रयोग में मानवीय है। अपनी सुपरिभाषित परिधि में यह मानव अनुप्रयोग व अनुसंधान की अपार संभावना प्रदान करता है। अपने विशिष्ट महत्व व पहचान के साथ यह युद्ध के सम्बंध में अन्य सिद्धांतों के प्रभावों के लिये भी खुला है। विशेष रूप से अपने विशिष्ट व मौलिक लक्षणों व सिद्धांतों से समझौता किये बिना यह प्रक्रियात्मक स्तर पर आधुनिक सैन्य विज्ञान से बहुत कुछ अपने में समाहित कर सकता है। अत: अच्छी समझ व इष्टतम परिणाम प्राप्त करने के लिये हमें उस लचीलेपन का अधिकतम प्रयोग करना चाहिए, जो इसके ईश्वरीय लेखक ने कृपापूर्वक प्रदान किया है। किंतु युद्ध के परंपरागत सिद्धांतों से सीखने के सचेत प्रयास में हमें अल्लाह की इस पुस्तक में स्वयं की प्राथमिकताओं व झुकाव डालने से बचना चाहिए।

कुरआन के फौजी विचार कुरआन के समग्र संदेश के अभिन्न व अविभाज्य अंग हैं। इस पुस्तक के आधारभूत व मौलिक लक्षणों को समझे बिना इस सिद्धांत का अध्ययन अधूरा रहेगा। हम किसी 'अंश' को तब तक नहीं समझ पाएंगे, जब तक कि वह अंश जिससे संबंधित है और जिसके लक्षण प्रकट करता है उसके 'सम्पूर्ण' को न पहचाने और समझें। ऐसा करते समय हमारी मंशा यह नहीं है कि हम पवित्र कुरआन का विस्तृत मूल्यांकन करें। हम केवल इस प्रकाशवान ईश्वरीय पत्रक की कुछ शाखाओं की पुनश्चर्या करेंगे, जिससे कि इस अध्ययन को इसके सच्चे अर्थों व परिप्रेक्ष्य में रख सकें।

एक समग्र व सम्पूर्ण ईश्वरीय प्रकटीकरण के रूप में पवित्र कुरआन अनंत काल तक मानवजाति के लिये ज्ञान, बुद्धिमत्ता, विज्ञान, तर्क, तत्व व मार्गदर्शन का असीम कोश है। इसके अपने शब्दों में 'यह पुस्तक मुसलमानों के लिये सभी वस्तुओं की व्याख्या करने वाला, मार्गदर्शक, दया, आनंदभरा संदेश है।'[1] निर्मल प्रेरणा के शाश्वत व सर्वकालिक स्रोत के रूप में यह पुस्तक जिस रूप में सभी हाथों तक पहुंचायी गयी है, उस स्वरूप में किसी भी प्रकार का खंडन या विकृति, सुधार, जोड़ या घटाव नहीं किया जा सकता है।

अपने प्रादुर्भाव के समय से ही यह अपनी मौलिकता, सौंदर्य, शैली, उच्चारण, शब्द-रचना, शब्द-व्युत्पत्ति, विज्ञान, तर्क, अक्षर व भावना में अपरिवर्तित है। इसकी सत्यता व प्रामाणिकता ईश्वरीय अभिभावकत्व में संरक्षित व आश्वस्त की गयी है। इसका ईश्वरीय लेखक कहता है, ''हमने बिना शंका यह संदेश भेजा है और हम सुनिश्चित रूप से (विकृति से) इसकी रक्षा करेंगे।''[2] कोई अन्य ईश्वरीय या मानव-निर्मित पत्रक पवित्र कुरआन के गुण व सुंदरता के बराबर नहीं हो सकता। अल्लाह चुनौती देता है, ''यदि तुम्हें उन संदेशों पर संदेह होता है, जो समय-समय हमनें अपने दास को भेजे हैं, तो इनके अतिरिक्त कोई सूरा दिखाओ; यदि तुम्हारे संदेह सही हैं और अल्लाह के अतिरिक्त भी यदि कोई तुम्हारा साथी या सहायक हो, तो उन्हें बुलाओ।''[3]

कुरआन पुस्तक मानव जाति की तीन श्रेणियों पर अपने रहस्यमयी सिद्धांतों का प्रतिपादन करती है और यह भी बताती है कि किस प्रकार मानव जाति को अल्लाह का संदेश मिला। अल्लाह कहता है, ''यह वो पुस्तक है जिसमें उनके लिये मागदर्शन, विश्वसनीयता है, जो अल्लाह से डरते हैं; जो उस अदृश्य में विश्वास करते हैं और उसकी इबादत में लगे रहते हैं, हमने उन्हें जो दिया है उसी में से व्यय करते हैं; और उनको आकाश से जो संदेश भेजा गया तथा जो उनके आने के पहले आया है, उसमें विश्वास करते हैं और जो आगे चलकर अपने मन में उसके प्रति विश्वास बनाये रखते हैं। वे अपने अल्लाह के सच्चे मार्गदर्शन के पथ पर हैं और ये ही वो हैं, जो पनपेंगे।''[4] एक अन्य अवसर पर पवित्र कुरआन कहती है, ''अल्लाह की ओर से तुम पर नया प्रकाश आया है और सुबोध पुस्तक आयी है, जिसमें अल्लाह उन सबको शांति व सुरक्षा का मार्गदर्शन देता है जो अल्लाह की दयालु कृपा चाहते हैं तथा अल्लाह अपनी इच्छा पर उन्हें अंधेरे से निकालकर प्रकाश के उस पथ की ओर ले जाता है जो सीधा है।''[5] जो अल्लाह को नकारते हैं, उनके लिये ईश्वरीय निर्णय यह है कि 'अल्लाह ने उनके हृदय तथा कानों पर मुहर लगा दी है अर्थात बंद कर दिया है और उनकी आंखों पर पर्दे पड़े हैं तथा उनको कठोर दंड मिलेगा।''[6] तीसरी श्रेणी का मनुष्य जो बाहर से तो इस्लाम को मानता है, किंतु भीतर से इस्लाम के विरुद्ध षडयंत्र पालता है, उसके विषय में पवित्र कुरआन कहती है:

''ये वो लोग हैं, जिन्होंने सीधी डगर (सुपथ) के स्थान पर भ्रम (कुपथ) क्रय कर लिया है। परन्तु उनका यह व्यापार लाभप्रद तो हुआ नहीं, पर उन्होंने सत्य का मार्ग अवश्य खो दिया।''[7]

---

[1] अल नहल: 19

[2] अल हिज्र: 9

[3] बकरा: 23

[4] बकरा: 2-5

[5] माइदा: 17-18

[6] बकरा: 7

[7] बकरा: 16

इस अध्ययन में उस व्यक्ति के व्यक्तित्व की झलक भी सम्मिलित है, जिसे यह असीम सर्वश्रेष्ठ ईश्वरीय मार्गदर्शन प्रदान किया गया; जिसने इसे ग्रहण किया और आत्मसात् किया; जो इसे प्रयोग और व्यवहार में लाया तथा आने वाली पीढ़ियों के शाश्वत प्रकाश व मार्गदर्शन के लिये उन तक पहुंचाया। इस उदात्त प्राणी पर पहले ही पोथियां लिखी जा चुकी हैं और अनंत काल तक लिखी जाती रहेंगी। इस अनुसंधान में उसके व्यक्तित्व के प्रभाव का आंकलन करने के लिये हम उसके बारे में पवित्र कुरआन की कुछ उक्तियां संक्षेप में दोहराएंगे। उस पुस्तक के अनुसार इस्लाम के रसूल (उन पर शांति हो) को एक साक्षी, आनंद के संदेशवाहक, सचेतक, प्रकाश फैलाने वाले दीपक के रूप में भेजा गया है, उसे एक ऐसे व्यक्ति के रूप में भेजा गया है, जो अल्लाह की कृपा से अल्लाह की ओर बुलाता है।[8] यह पुस्तक मानवजाति से कहती है, ''जो अल्लाह में और प्रलय (कयामत) में आशा रखता है और जो अल्लाह की प्रशंसा में अधिकाधिक लगा रहता है, उसके लिये वास्तव में अल्लाह के रसूल में आचार-व्यवहार की एक सुंदर शैली मिलती है।''[9] इस पुस्तक में अन्य अवसरों पर भी पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) को इसी प्रकार की श्रद्धांजलि दी गयी है। इस अध्ययन के उद्देश्य से हमारे लिये जो जानना महत्वपूर्ण है, वह यह है कि पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) द्वारा जंग पर बताये गये अल्लाह के निर्देश जंग के संबंध में कुरआन की अवधारणा के अविभाज्य अंग का गठन करते हैं। व्यापक अनुसंधान के लिये हमारा दृष्टिकोण आरंभ से अंत तक एकीकृत व समन्वित होना चाहिए। हमें जंग पर कुरआन के ज्ञान को समझने के लिये यह अवश्य देखना चाहिए कि जब रसूल मूर्तिपूजकों के साथ जंग लड़ रहे थे, तो उन्होंने इस ज्ञान की व्याख्या कैसे की था एवं इसका प्रयोग कैसे किया था। रसूल के 'आचरण का वह सुंदर आदर्श' अवश्य ही जंग के संबंध में कुरआन के सिद्धांत को समझने और जंग की योजना, संचालन व नियंत्रण में निर्धारित व प्रयुक्त होना चाहिए।

हमारे लिये कुरआनी फौजी विचार के प्रकटन के समय, पद्धति व क्रम को समझना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। जंग पर यह अल्लाह का सिद्धांत इस्लाम के आविर्भाव के तुरंत बाद नहीं प्रकट हुआ था। अल्लाह द्वारा कुरआन की लगभग दो तिहाई सूरा पहले ही भेजी जा चुकी थी और यह सिद्धांत इसके लगभग 12 वर्ष पश्चात भेजा गया। मानव-निर्मित अवधारणा व सिद्धांतों से विशिष्ट रूप में भिन्न जंग के संबंध में यह अल्लाह की अवधारणा एक ही जुड़े हुए प्रपत्र के रूप में नहीं लिखी गयी थी और न ही किसी एक ही पुलिंदे या अंश में दी गयी थी, अपितु यह धीरे-धीरे व एक के बाद एक करके प्रकट की गयी थी। वास्तविक जंग प्रारंभ होने से पूर्व भेजे गये आरंभिक निर्देश अति संक्षिप्त व स्थूल थे। वे जंग के आधारभूत उद्देश्यों के विषय में लंबे समय में लिखे गये थे तथा इसके केन्द्रीय विषय-वस्तु व तत्व को बताते थे। इन आदेशों में जंग की सीमा, पद्धति व तकनीकों पर प्रभावी नियंत्रण भी विनिर्दिष्ट हैं। बाद के अधिकांश निर्देश पूर्व के फौजी अभियानों पर ईश्वरीय समीक्षा के रूप में प्रकट किये गये थे। इनमें उस अभियान से जुड़े विशिष्ट विषय के अतिरिक्त जंग के संचालन में रणनीति व सिद्धांतों पर कुरआन की अवधारणा सम्मिलित थी। इनमें जंग के उन उद्देश्यों, लक्ष्यों, प्रकृति, लाक्षणिकताओं, आयामों व नीति-सिद्धांत से संबंधित पूर्व के निर्देशों को विस्तार दिया गया था। पवित्र रसूल द्वारा किये गये प्रयोगों के साथ ही अल्लाह के ये श्रुति-प्रकाश जंग के संबंध में कुरआन की अवधारणा को समग्र व सम्पूर्ण विस्तार देते हैं।

---

[8] अल-अहजाब: 45-46

[9] अल-अहजाब: 21

अध्याय 2

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

610 ईस्वी में जब इस्लाम के रसूल (उन पर शांति हो) अरब में अल्लाह द्वारा आदेशित अपने अभियान के लिये मुखर हुए, तो उस समय चार प्रमुख वैश्विक सत्ता पूर्वी रोमन साम्राज्य, फारस का साम्राज्य, चीन और भारत थे। पूर्वी रोमन साम्राज्य एशिया माइनर, सीरिया, फोनेशिया, फिलिस्तीन, इजिप्ट, उत्तरी अफ्रीका, क़र्ताज तक व्याप्त था। फारस के साम्राज्य के नियंत्रण में ईराक, मेसोपोटामिया, आधुनिक फारस, बैक्ट्रिया और मध्य एशिया के क्षेत्र थे जो भारत और तारतरी की सीमा से लगते थे। यद्यपि इन दोनों साम्राज्यों की सीमाएं अनिर्धारित थीं, किंतु इनकी सीमाएं एक-दूसरे से लगती थीं और इनके दक्षिण में अरब था जो सीरियो-मेसोपोटामियन रेगिस्तान से होकर जाता था। बैजेंटाइन और फारस के मध्य सामान्य सीमांत क्षेत्र विरले ही परिभाषित थे और यह दक्षिण की ओर काला सागर के पूर्वी छोर से लेकर पालमायरा के उत्तर-पूर्व बिंदु पर यूफेरैट्ठ की ओर सीधी रेखा में निकलते थे। इस प्रकार इसमें काकसस के क्षेत्र, आर्मेनिया और फारस साम्राज्य का निचला यूफेरैट्ठ आता था। चीन की राजनीतिक शक्ति फारस की खाड़ी से लेकर प्रशांत महासागर तक थी तथा भारत हर्षवर्द्धन के शासन में फल-फूल रहा था।

इस्लाम के जन्म से सदियों पूर्व फारस व रोमन एक-दूसरे के साथ युद्धरत रहते थे। 480 ईस्वी पूर्व जीरक्सीज ने यूनान पर भू-मार्ग व जल-मार्ग दोनों ओर से आक्रमण किया था और पराजित हुआ था। 470 से 387 ईस्वी पूर्व हेलेनिक व फारसी जगत के बीच कभी शांति. तो कभी युद्ध चलता रहता था। 387 ईस्वी पूर्व एंटालकिडस की संधि के अनुसार फारस प्रत्यक्ष रूप से यूनान के अधीन एक शासन हो चुका था। 330 ईस्वी पूर्व अलेक्जेंडर फारस की विजय के लिये बढ़ा और अटलांटिक से मध्य एशिया तक हेलेनिक प्रभाव बढ़ाया। किंतु पार्थिया के नेतृत्व में फारस के लोगों ने हेलनवाद के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तथा अर्सासिड वंश की स्थापना की, जिसने फारस पर पुन: पूर्ण विजय प्राप्त की तथा अपना प्रभाव काला सागर व पालमायरा तक बढ़ाया। 225 ईस्वी में ससानियन लोगों ने अर्सासिड के शासन को उखाड़ फेंका, पर दोनों साम्राज्यों के मध्य युद्ध की प्रचण्डता निरंतर रही।

330 ईस्वी में रोमन साम्राज्य की राजधानी कुस्तुंतुनिया स्थानांतरित होने के साथ ही फारस-रोमन युद्ध और भयानक व बारंबार होने लगा। छठी शताब्दी के मध्य में जब 34 वर्ष तक समकालीन शासक रहे जस्टिनियाई व अनुशिरवन ने रोमन व फारस पर क्रमश: नियंत्रण कर लिया, तो संघर्ष ने और हिंसक रूप धारण कर लिया। 540 ईस्वी में फारस ने पहल की और सीरिया पर आक्रमण करके एंटिऑक पर नियंत्रण कर लिया, किंतु उसकी बढ़त को एक समर्थ रोमन जनरल बेलीसैरियस द्वारा रोक दिया गया। 579 ईस्वी में अनुशिरवन की मृत्यु हुई तथा उसके अयोग्य बेटे हरमुज के हाथों में सत्ता आई, जो वह सत्ताच्युत किया गया और 590 ईस्वी में मार डाला गया। उसका बेटा खुसरो (कोसरोजII) सिंहासनारूढ़ हुआ और 638 ईस्वी तक राज किया। उसी को पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) ने पत्र भेजकर इस्लाम स्वीकार करने का बुलावा भेजा था।

रोमन सीमा पर एक साधारण शतपति फोकस ने रोमन सम्राट माउरिस को 602 ईस्वी में मार दिया और सिंहासन पर अधिकार कर लिया। 610 ईस्वी में अफ्रीका के गर्वनर हरकुलिस द्वारा सत्ताच्युत किये जाने तक वह शासन करता रहा। हरकुलिस को इस्लामी इतिहास में उस हरकल के रूप में भी जाना जाता है, जिसने 642 ईस्वी तक पूर्वी रोमन साम्राज्य पर शासन किया। उसी के राज में मुसलमानों ने रोमनों से सीरिया व इजिप्ट छीना था। हरकुलिस व कोसरोजII (610-628 ईस्वी) के मध्य संघर्ष का गहरा राजनीतिक व धार्मिक महत्व है और कुरआन के 'रूम' नामक अध्याय में इसका उल्लेख है। इस अवधि के पूर्वार्द्ध में युद्ध का संतुलन स्पष्टत: फारसियों के पक्ष में झुका रहा। 611 ईस्वी तक उन्होंने सीरिया के मुख्य नगरों अलेप्पो, एंटिऑक व दमाकस को जीत लिया। 614-615 ईस्वी के मध्य येरूशलम भी फारस की सेना के नियंत्रण में आ गया।

THE ROMAN COUNTER_OFFENSIVE : 622_628 AD

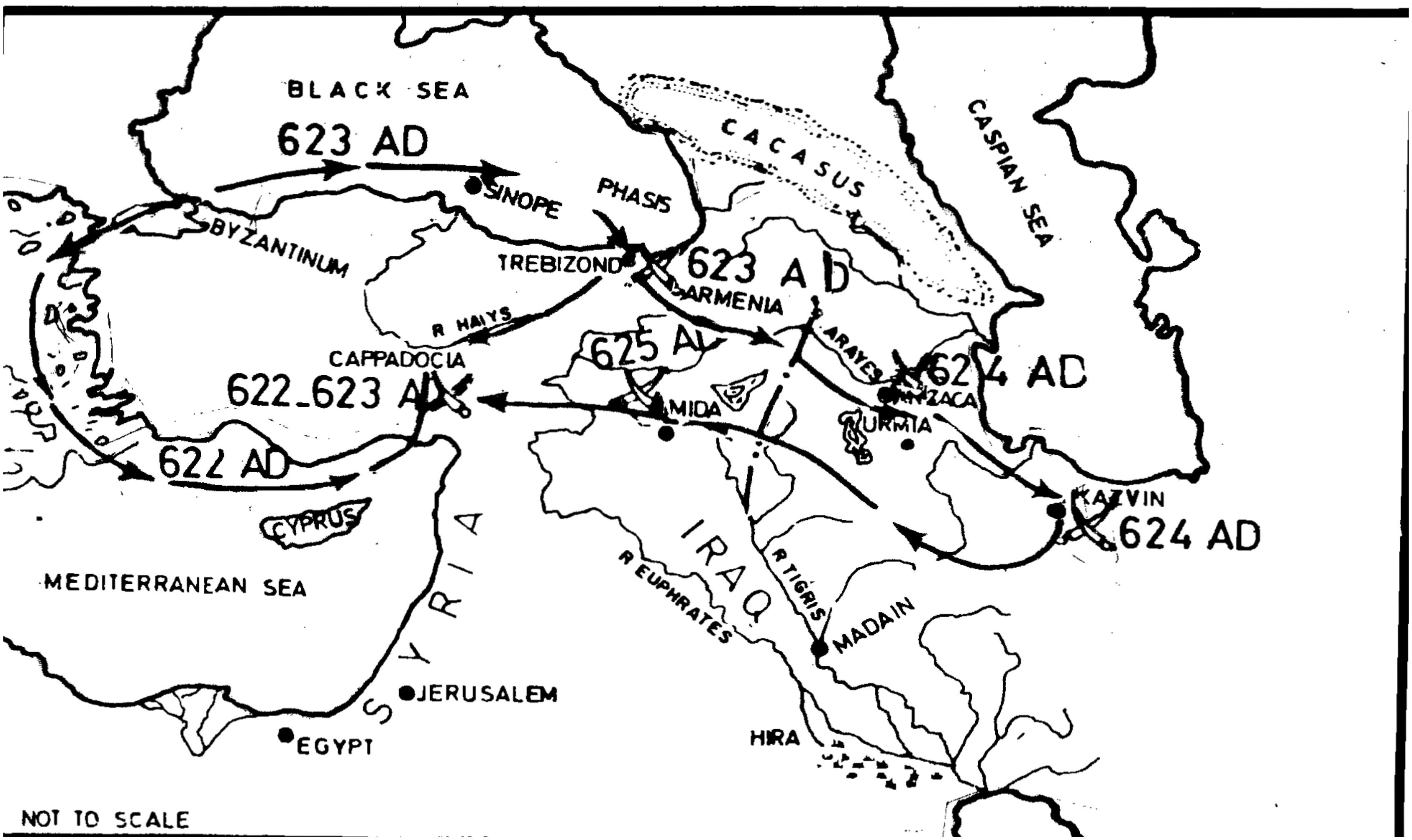

एक वर्ष पश्चात फारसियों ने इजिप्ट को जीत लिया और अपना प्रभाव त्रिपोली तक बढ़ा लिया। लगभग इसी समय वे एशिया माइनर का विध्वंस किया तथा कुस्तुंतुनिया के द्वार तक पहुंच गये।

अ-ईसाई फारस द्वारा ईसाई रोम पर विजय प्राप्त करने से अरब के मूर्तिपूजक अति प्रसन्न हुए। इसी प्रकार यहूदी भी फारसी मूर्तिपूजकों की इन विजयों से अत्यंत आनंदित हुए, क्योंकि वे भी ईसाइयों के निरंतर अत्याचार व दमन में जीने को विवश थे। किंतु जब फारसी, मूर्तिपूजक व यहूदी इन विजयों का उल्लास मना रहे थे, तो पवित्र कुरआन में उनके भविष्य के लिये पूर्णत: भिन्न आगम की योजना थी। पवित्र पुस्तक ने घोषणा की, ''रोमन साम्राज्य समीप की धरती में पराजित हो गया। किंतु यह पराजय होने के बाद भी वे शीघ्र ही, कुछ ही वर्षों में, विजयी होंगे! पहले भी अल्लाह का ही निर्णय था और और भविष्य में (भी) उसी का निर्णय होगा। उस दिन मोमिन प्रसन्न होंगे।''[1] अल्लाह के इन शब्दों से मुसलमानों को बहु-प्रतीक्षित ताकत व आश्वासन मिला, किंतु इसका उन मूर्तिपूजकों पर न के बराबर प्रभाव हुआ, जिन्होंने अल्लाह को उपहास व आलोचना का पात्र बना दिया था।

फारस-रोम के इस युद्ध की अवधि में अरब प्रायद्वीप का मुख्य भाग किसी भी शासन द्वारा कभी नहीं जीता जा सका, किंतु इन दोनों ने अनेकों बार इसके सीमांत क्षेत्रों को अपने क्षेत्रों में मिला लिया था। वैसे अरब पर इन दोनों शक्तियों का सांस्कृतिक प्रभाव था। साथ ही अरब व अबीसीनिया साम्राज्य के मध्य सुदृढ़ सांस्कृतिक व राजनीतिक संबंध थे। अबीसीनिया लाल सागर की दिशा में स्थित एक साम्राज्य था। यमन फारस के प्रभाव में था, जबकि जस्टिनियनों के शासन में रोमनों ने अबीसीनिया के साथ गठबंधन कर रखा था। इस प्रकार फारस व अबीसीनिया एक-दूसरे से युद्धरत थे। समुद्री मार्ग से अरब के तटीय क्षेत्र यमन तक फारस की पहुंच बहुत सुगम थी और उनके अभियानों के रणक्षेत्र के रूप में इस तटीय क्षेत्र का बहुत दोहन हुआ।

रसूल अब्राहा (उन पर शांति हो) के जन्म के वर्ष 570 ईस्वी में, यमन में अबीसीनिया के गवर्नर मक्का स्थित काबा के विध्वंस का लक्ष्य लेकर आक्रामक अभियान पर निकले, किंतु निर्णायक रूप से पराजित व नष्ट हुए। कुरआन में इस अभियान के विषय में 'अशबिल फ़ील' (हाथी के साथियों) दिया गया है। कुरआन कहती है, ''क्या तुम नहीं जानते कि तेरे अल्लाह ने हाथी वालों के साथ क्या किया? क्या उसने उनकी चाल को विफल नहीं कर दिया? जो उन पर कंकरी के पत्थर मारने वाले पंक्षियों के झुंड भेजे। तो उन्हें ऐसा कर दिया, जैसे कि चरे जाने के लिये ठूंठ और सूखे डंठल वाला खेत।''[2]

इसी बीच, इस्लाम की घोषणा के समय से ही मक्का के मुसलमानों का छोटा सा समुदाय कुरैशों के अत्याचार व दमन से पीड़ित था। उन पर निरंतर अमानवीय यंत्रणा, दमन व अत्याचार हो रहा था। उनका उपहास उड़ाया जाता, उन पर धौंस दिखाया जाता था और उन पर चढ़ाई की जाती थी। जो शत्रु की पकड़ में होते थे, उन्हें बेड़ियों में जकड़ा जाता था और बंदीगृह में डाल दिया जाता था। अन्य को दीर्घकालिक आर्थिक व सामाजिक पीड़ा का सामना करना पड़ता था। जब कुरैशों ने मुसलमानों को अपने मजहबी कर्तव्य को पूरा करने के लिये पवित्र मस्जिद में जाने की अनुमति देने से मना कर दिया, तो इस प्रकार शत्रु का दमनचक्र उस समय अपने चरम पर पहुंच चुका था। पवित्रता को भंग करने वाला यह कार्य इस्लाम के विरुद्ध जंग की खुली घोषणा जैसी थी। इससे अंतत: 12 वर्ष पश्चात 622 ईस्वी में मुसलमान मदीना चले जाने को विवश हो गये।

मदीना प्रवास मुसलमानों के लिये व्यापक महत्व वाले अनेक घटनाक्रम, निर्णय एवं दूरगामी परिणाम वाला रहा। जब वे मक्का में थे, तो उन्हें न तो 'उम्मा' की घोषणा करने दी गयी और न ही जंग का आश्रय लेने की अनुमति मिली। मदीना में अल्लाह की वाणी ने उनके लिये एक 'उम्मा' की घोषणा की और सताने वालों के विरुद्ध जंग करने की अनुमति दी। तत्पश्चात् यह अनुमति शीघ्र ही अल्लाह के आदेश में परिवर्तित हो गयी और मोमिनों के लिये मजहबी जंग करना आवश्यक बना दिया गया। नये स्तर पर दिये गये इस अभियान ने अपने अनुशोधन,

---

[1] अल-रुम: 2-4

[2] अल-फ़ील: 1-5

संतुलन, व्यवहार्यता व सार्वभौमिकता पर बल दिया। कुरआन ने घोषणा की, ''इसी प्रकार हमने तुम्हें न्यायोचित रूप से संतुलित उम्मा (समुदाय) बना दिया, जिससे कि तुम राष्ट्रों पर साक्षी बनो और रसूल तुम पर साक्षी हों।''[3]

बाद की एक आयत में पवित्र कुरआन ने आदेश दिया ''तुम मानवजाति के विकासक्रम में अब तक आये मनुष्यों में सबसे अच्छे हो, तुम भलाई का आदेश देते हो तथा बुराई को रोकते हो और अल्लाह पर विश्वास (ईमान) रखते हो।''[4] इन घोषणाओं ने नये राज्य के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व सैन्य सिद्धांतों की नींव रखी और इसकी नीति व रणनीति का आधार तैयार किया। इन घोषणाओं ने राज्य नीति व इसके सामाजिक-आर्थिक ढांचे के संबंध में अल्लाह के आयतों की श्रृंखला की धारा तैयार की।

लघु रूप में स्थापित इस नये राज्य को अपने आंतरिक व वाह्य व्यवहारों में औचित्य, धार्मिकता व संतुलन के मार्ग का अनुपालन करने का निर्देश दिया गया। यह आदेश दिया गया कि मूसा के कानून की अति नियम-निष्ठता एवं ईसाइयत की सुस्पष्ट 'अन्य सांसारिकता' के मध्य संतुलन स्थापित किया जाए। यह भी कहा गया कि सतर्क रहते हुए विश्व की प्रतिद्वंद्वी प्रणालियों में न्याय बांटने वाला अथवा मध्यस्थ की भूमिका में कार्य करने के लिये भी तैयार रहना है। संक्षिप्त में, जैसा कि अल्लामा अब्दुल्ला यूसुफ अली ने व्याख्या की है, यह आदेश अपने लिये ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण मानवजाति के लिये जीने का आदेश देता है। इन घोषणाओं के समावर्ती, पूर्व में जो किबला येरूशलम में घोषित किया गया था, उसे नये राज्य में परिवर्तित कर दिया गया और मक्का में क़िबला प्रदान किया गया। यह नया किबला केवल वह दिशा निश्चित करने के लिये नहीं था, जिसकी ओर मुख करके मुसलमान नमाज पढ़ें, अपितु यह इस उद्देश्य से भी दिया गया कि मुसलमान इसे अपनी विशिष्ट पहचान के प्रमाण-चिह्न एवं अंतर्राष्ट्रीय एकता के रूप में देखें। अल्लाह ने कहा, ''हे नबी! हम तेरे मुख को बार-बार आकाश की ओर देखता हुआ पा रहे हैं: तो हम अवश्य तुझे उस क़िबले (काबा) की ओर कर देंगे, जिससे कि तू प्रसन्न हो जा। तो (अब) अपने मुख मस्जिदे ह़राम (पवित्र मस्जिद) की ओर कर ले तथा (हे मुसलमानो!) तुम भी जहां रहो, उसी की ओर मुख किया करो। तुम कहीं से भी निकलो, पर अपना मुख मस्जिदे हराम की ओर करो: जो दुष्टता पर उतारू हैं उनको छोड़कर, भला ऐसा और भी कोई होगा, जो इब्राहीम के मजहब से विमुख हो जाए।''[5]

आरंभ से ही अनेक शत्रुओं द्वारा उस छोटे नगर-मदीना के राज्य पर खतरे उत्पन्न किये गये थे। आसन्न खतरा मदीना के उस यहूदी समुदाय द्वारा उत्पन्न किया गया, जो 500 वर्षों से अधिक समय से इस नगर पर जमा हुआ था। उत्तरी अरब में ऐलया, मकना, तबूक, तेमा, वादी-अल-कुरा, फ़िदक व खैबर में इन यहूदियों का सुदृढ़ व समृद्ध अस्तित्व था। उस समय मदीना के चारों ओर शत्रु मूर्तिपूजक जनजातियां रहती थीं, जिनके धार्मिक विश्वास कुरैशों के समान थे तथा वे उनके साथ दीर्घकालीन राजनीतिक व सामाजिक मेल-जोल रखती थीं। यद्यपि इस नये राज्य के अस्तित्व पर मुख्य खतरा 400 मील दूर मक्का से आया, जो मुसलमानों और मूर्तिपूजक अरब के बीच युद्ध का मुख्य केंद्र बना। इसके तुरंत पश्चात एक और शत्रु जो मूर्तिपूजकों से भी अधिक खतरनाक था, वह रणक्षेत्र में कूदने वाला था और वो शत्रु थे इस्लाम के मुनाफिक (ढोंगी)। ये मुनाफिक बाहर से तो इस्लाम के प्रति निष्ठा प्रकट करते थे, किंतु भीतर-भीतर ये इस्लाम की जड़ें काटने में लगे थे।

फारस-रोमन सीमा पर फारस के पराजय की अल्लाह की घोषणा हिजरा के वर्ष 622 ईस्वी में मूर्त रूप लेने लगी थी और 628 ईस्वी आते-आते यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो गयी। बैजेंटाइन साम्राज्य के सिंहासन पर आरूढ़ होने के पश्चात हरकुलिस ने फारस के विरुद्ध व्यापक व आक्रामक प्रति-कार्रवाई प्रारंभ की। 623 ईस्वी में दर्डनेल्स से होते हुए उसने आर्मेनिया पार कर लिया और कज़विन जीत लिया। अगले वर्ष उसने सिलिशिया जीता और इसके साथ ही कुस्तुंतुनिया पर अवार्स के आक्रमण को विफल किया। 627 ईस्वी में उसने निनेव के युद्ध में फारस को विस्तृत रूप से पराजित किया और उनके सम्राट को चाल्सडन, इजिप्ट व सीरिया को छोड़ने पर विवश कर दिया। 628 ईस्वी में खुसरो परवेज की हत्या हो गयी और उन दोनों साम्राज्यों के बीच हुई संधि के अनुसार 602 ईस्वी की सीमाएं पुन:स्थापित हो गयीं। वह ट्रू क्रॉस बैजेंटाइन को पुन: प्राप्त हो गया और अल्लाह का कथन सत्य-सिद्ध रहा। एक वर्ष पश्चात 629 ईस्वी में विजेता रोमन सेना जब फारस से लौट रही थी, तो पहली बार उन्होंने मुता के युद्धक्षेत्र में मुसलमानों से दो-दो हाथ किया। दो वर्ष पश्चात वे तबूक में एक बड़ी सेना एकत्र कर अरब के मुसलमानों की सुरक्षा पर सीधा खतरा उत्पन्न करने वाले थे। पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) की मृत्यु के बाद मुसलमान परिस्थितियों-वश रोम व फारस के

---

[3] बकरा: 143

[4] आले-इमरान: 110

[5] बकरा: 144, 149-130

विरुद्ध एक-साथ जंग करने को विवश हुए। इस्लाम के उगते सूरज के अधीन फारस साम्राज्य 680 ईस्वी तक विश्व के मानचित्र से लुप्त हो गया। लगभग उसी समय मुसलमानों ने रोमनों से सीरिया, इजिप्ट, एनॉटोलिया, साइरैनिका, त्रिपोलेटेनिया व आर्मेनिया भी जीत लिया।

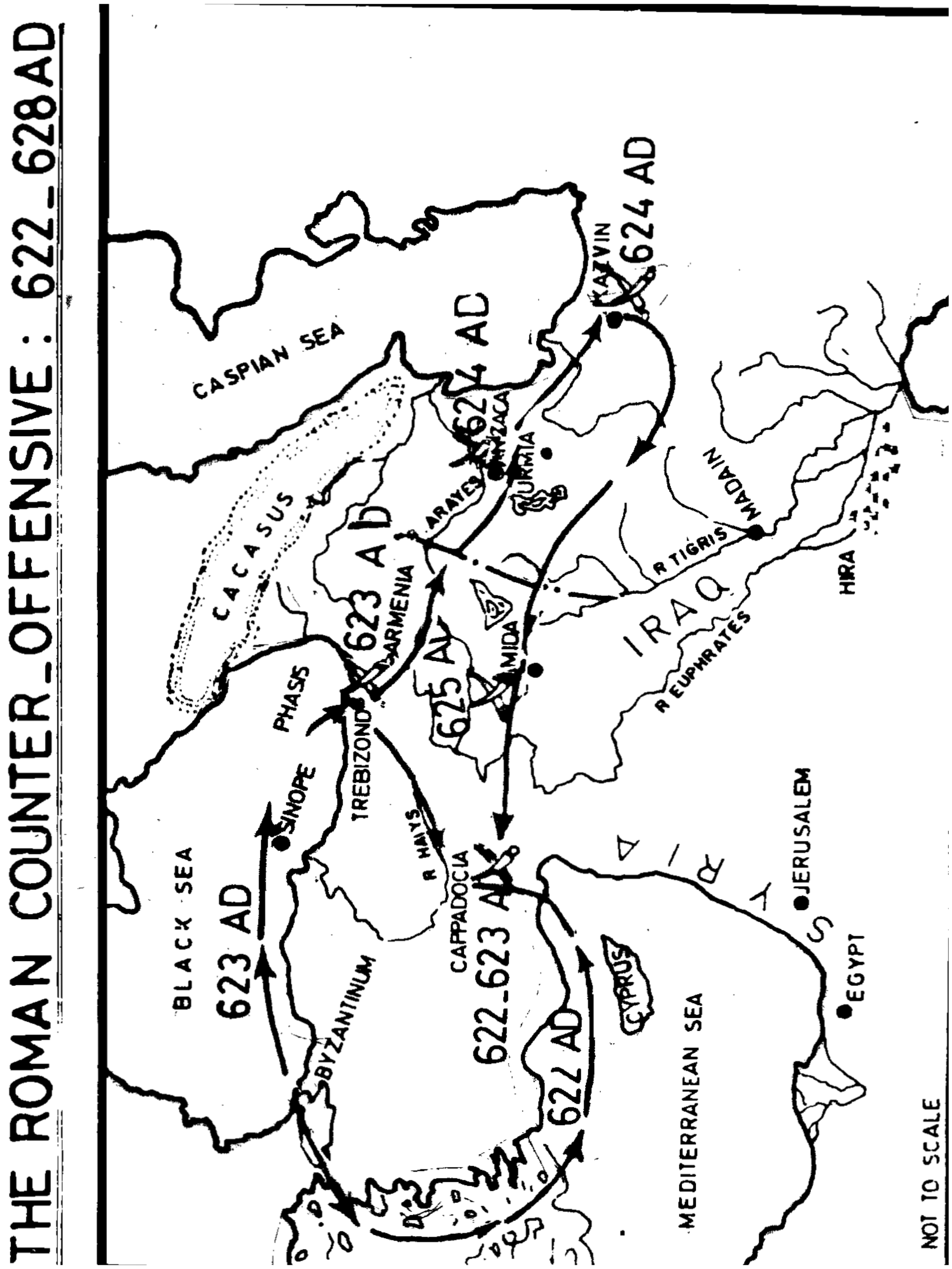

अध्याय 3

जंग के उद्देश्य

जब से द्वेष और घृणा के वशीभूत केन ने अपने छोटे भाई अबेल को मार डाला था, तभी से मानव जाति किसी न किसी कारण से एक-दूसरे से युद्धरत है। शोध अध्येताओं ने इन युद्धों के कारणों को जानने के लिये अनेक अध्ययन किये हैं। लुईस एफ. रिचर्डसन अपनी विद्वतापूर्ण रचना 'युद्ध का गणितीय मनोविज्ञान' और 'खतरनाक विवादों की सांख्यिकी' में युद्ध के प्रस्फुटन की व्याख्या मानव मस्तिष्क में गहरे जमे रोग के रूप में करते हैं। उन्होंने अपना विचार प्रकट करते हुए कहा कि युद्ध का उभय उपचार दुर्भाग्य से स्वयं युद्ध ही होता है। उनके अनुसार दारुण व प्रचंड युद्धों ने उन्हें तो प्रतिरक्षा प्रदान की जिन्होंने इन युद्धों का अनुभव लिया, किंतु जब नयी पीढ़ी आयी तो वह प्रतिरक्षा धूमिल हुई और नयी व्यग्रता के साथ युद्ध प्रारंभ हुआ। एडम स्मिथ और थॉमस होब्स ने भी निष्कर्ष निकाला है कि युद्ध मानव स्वभाव का अभिन्न अंग है। टॉयनबी की प्रतिष्ठा के समकक्ष आजकल के एक इतिहास लेखक का प्रेक्षण है कि मानव इतिहास में युद्ध और शांति का ऐसा चक्र चला, जिसने औसत रूप से सौ वर्ष के संक्षिप्त काल में अपना एक चक्र पूरा किया। उनके विचार से यूरोप के इतिहास का पूर्ण चक्र 1815-1914 के मध्य पूरा हुआ।

लेनिन ने कहा था कि युद्ध एकाधिकारी पूंजीवाद के तनाव व बोझ के कारण होते हैं। बर्नार्ड ब्रॉडी के अनुसार युद्ध के कारण आर्थिक, राजनीतिक व मनोवैज्ञानिक कारकों में पाये जाते हैं। युद्ध विस्तार, उत्तराधिकार, स्वतंत्रता, क्रांति व मुक्ति के लिये भी छेड़े जाते हैं। जर्मनी ने द्वितीय विश्वयुद्ध जर्मन लेबेंस्रेम के अपने भू-राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये प्रारंभ किया था। जापानियों ने महान पूर्वी एशिया सह-समृद्धि क्षेत्र की स्थापना के लिये इसी का अनुसरण किया। अपनी पुस्तक, 'युद्ध के कारण' में जेफ्री ब्लेनी ने उन कारकों पर ध्यान केंद्रित किया है, जो युद्ध के कारित होने में योगदान देते हैं। उनके निष्कर्षों में राष्ट्रवाद से लेकर विचारधारा और नीति-निर्माताओं की मानसिक ग्रंथियां, राष्ट्रों का युद्ध-सामर्थ्य, उनकी अर्थव्यवस्था एवं आंतरिक संशक्ति व एकता तक इसके कारकों में आते हैं।

अपनी महत्वपूर्ण रचना 'युद्ध का अध्ययन' में क्विंसी राइट सुझाव देते हुए प्रतीत होते हैं कि युद्ध एक ऐसा सामाजिक रोग है, जिसके उपचार के लिये उसके प्रत्येक अभिव्यंजना की सर्जरी होनी चाहिए। वह युद्ध को एक ऐसी विधिक दशा के रूप में परिभाषित करते हैं, जो दो अथवा दो से अधिक शत्रु समूहों को सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से युद्ध करने की समान अनुमति देता है। वे निष्कर्ष देते हैं कि युद्ध कुछ अवधारणाओं और उनके वास्तविक क्रियान्वन के मध्य विरोधाभास के अस्तित्व के कारण हुए। वे युद्धों के कारणों को दो श्रेणियों में विभाजित करते हैं: साहित्यिक अथवा दार्शनिक एवं वास्तविक। 'साहित्यिक' कारण दार्शनिक अथवा बौद्धिक विचार के विषय हैं, जबकि 'वास्तविक' कारण वो होते हैं, जो विशिष्ट युद्धों के वृत्त-अध्ययन से ज्ञात होते हैं।

क्विंसी राइट ने युद्ध के साहित्यिक कारणों को वैज्ञानिक, ऐतिहासिक व व्यवहारिक तीन भागों में उप-विभाजित किया है। उनकी दृष्टि में वैज्ञानिक कारण सामाजिक ज्ञान व नियंत्रण की अपरिपक्वता में होते हैं। ऐतिहासिक कारणों में घरेलू समस्याएं, आक्रामक विदेश नीति, समाधानरहित विवाद, सैन्य सिद्धांतों, तकनीक व सशस्त्रीकरण में नये विकास, राजपरिवारों के प्राधिकारों तथा ऐतिहासिक प्रतिद्वंद्विता सम्मिलित होती हैं। व्यवहारिक कारणों के मूल में मानव प्रकृति जटिलताएं यथा उनकी महत्वाकांक्षाएं, आकांक्षाएं, कटुता, अविवेक होते हैं। इस विचारधारा के अनुसार युद्ध अस्तित्व व उत्तरजीविता के लिये; धन, बल व सामाजिक एकजुटता प्राप्त करने के लिये और उचाटपन व हताशा से उबरने व तनावमुक्ति के लिये किये जाते हैं।

युद्ध के कारणों के विषय में विशिष्ट वृत्त-अध्ययनों से निकले क्विंसी के अनुमान हमारे लिये विशेष रुचि के हैं। क्योंकि उनके वृत्त अध्ययन में 100 वर्षीय युद्ध, 30 वर्षीय युद्ध, नेपोलियन का युद्ध और प्रथम विश्वयुद्ध के अतिरिक्त आरंभिक मुस्लिम जंग व ईसाईयों का धर्मयुद्ध क्रूसैड भी सम्मिलित है। क्विंसी आरंभिक मुस्लिम जंग के कारणों का विश्लेषण करते हुए पड़ोसियों द्वारा अरब का उत्पीड़न व दबाव, अतिरेक ऊर्जा का प्रवाह, आर्थिक कठिनाइयां, अति-जनसंख्या, आंतरिक एकता को संरक्षित करने की आवश्यकता, पारंपरिक युद्ध-अरब की प्रवृत्ति और जेहाद का सिद्धांत आदि कारकों को उत्तरदायी ठहराते हैं। वह ईसाई धर्मयुद्ध को ईसाईयत के नये उत्साह और कुछ समय पूर्व ही विकसित न्याय

युद्ध के विचार का विकास, राजनीतिक महत्वाकांक्षा एवं आर्थिक कठिनाई का प्राकृतिक परिणाम मानते हैं। युद्ध के कारणों पर वर्तमान सिद्धांत यह है कि युद्ध तब होते हैं जब आवश्यक किंतु असंगत राष्ट्रीय हित दांव पर लगे हों। फ्रेडरिक एच. हार्टमन अपनी पुस्तक ''इन ए सावरेन-स्टेट सिस्टम'' में कहते हैं, ''इस पर कदाचित ही अधिक बल दिया सकता है कि युद्ध और शांति प्रत्येक निर्णय व प्रत्येक राज्य पर निर्भर होती है। इस प्रकार की प्रणाली में युद्ध की संभावना बनी रहती है। युद्ध की आशंका संघर्ष में तब रूपांतरित हो जाती है, जब दो या अधिक राज्यों के असंगत हित टकरा रहे हों।'' हार्टमन के अनुसार यदि राज्य किसी कारण को महत्वपूर्ण समझता है तो ऐसा कोई भी महत्वपूर्ण हो जाता है, और युद्ध केवल इसलिये होते हैं, क्योंकि एक प्रभुत्वसम्पन्न राष्ट्र दूसरे पर आक्रमण करने का निर्णय करता है।

अब तक युद्ध के विभिन्न सूचीबद्ध कारणों में कुछ विशेषताएं दृष्टिगोचर हैं। प्रथमत: इन कारणों में एकरूपता की कमी होती है; यथा भिन्न-भिन्न युद्धों के कारण भी भिन्न होते हैं। द्वितीयत: मानव समाज में परिवर्तन व विकास के साथ ही युद्ध के कारण परिवर्तित होते रहते हैं। वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में युद्ध के जो कारण पाये जाते हैं, जनजातीय समाज के युद्ध के कारण उनसे भिन्न होते हैं। तृतीयत: युद्ध के कारणों में ऊबाऊपन व हताशा से लेकर महत्वपूर्ण राष्ट्रीय हित तक आते हैं। चतुर्थ रूप से युद्ध के कारणों की न्यायसंगतता अथवा इस प्रकार के किसी विषय को निश्चित करने के लिये कोई स्वीकृत विधि, पंचाट अथवा वस्तुनिष्ठ कसौटी नहीं है। राष्ट्रीय हितों के निर्माण और तद्नुसार युद्ध के कारणों के लिये प्रत्येक राष्ट्र के अपने मूल्य व मानक होते हैं। कौन से कारक किसी राष्ट्र को युद्ध में जाने को उकसा सकते हैं, इस पर हार्टमन के शब्दों में, 'दूसरे में एक चिंगारी भी युद्ध भड़का सकती है!'

जब पवित्र कुरआन ने मुसलमानों को अपने प्रतिद्वंद्वियों के साथ जंग करने का आदेश दिया, तो यह व्यापक रूप से उन कारणों के आधार पर था, जिनके कारण यह निर्णय करने की आवश्यकता पड़ी। इन कारणों को समझने के लिये हमें सर्वप्रथम मानव जीवन की पवित्रता व संरक्षण के विषय में मूल कुरआनी कानून को जानना होगा। यह स्मरण किया जाना चाहिए कि जब विश्वपटल पर इस्लाम आया, तो मानव जीवन का मोल न के बराबर था। अरब, रोम, फारस और विश्व के अन्य भागों में मानवजाति की हत्या की जा रही थी, उन्हें जलाया जा रहा था अथवा उन्हें जीवित ही गाड़ दिया जाता था और केवल आमोद-प्रमोद, क्रीड़ा, आनंद, परंपरा व अंधविश्वास के लिये उन्हें पशुओं की भांति काट डाला जाता था अथवा मृत्युतुल्य प्रताड़ना दी जाती थी। विधि के समक्ष उत्तरदायित्व के किसी भी भय के बिना इस प्रकार की क्रूर हत्याएं की जाती थीं। इस्लाम उन अमानवीय प्रथाओं की निंदा करने के लिये आगे आया और मानव जीवन को पवित्र घोषित किया तथा इसके सम्मान, संरक्षण व सुरक्षा के लिये कड़े आदेश निर्गत किये। इसने विधि व न्याय के कारणों के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से मानव जीवन के हरण को निषिद्ध किया तथा सभी प्रकार की अविधिक मृत्यु को इस संसार और परलोक दोनों में उत्तरदायी व दंडनीय बनाया। पवित्र कुरआन के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार के उत्तरदायित्व ने मानव जीवन का संरक्षण सुनिश्चित किया तथा यह स्वयं मानवजाति के व्यापक हित में था।

यह पवित्र पुस्तक कहती है, ''हमने इजराइल के बच्चों को आदेश दिया कि दुष्टता फैलाने वाले अथवा हत्या करने वाले को छोड़कर यदि कोई भी किसी और की हत्या करता है, तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि मानों उसने समस्त मानवजाति की हत्या की है।''[1] इन आयतों के अनुसार अविधिक रूप से मानव के प्राण लेना उतना ही बड़ा पाप है, जितना कि जीवन की पवित्रता व मोल। इस बिंदु को और स्पष्ट करते हुए इस पुस्तक ने पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) को संबोधन में कहा, ''उनसे कहो, 'आओ, मैं तुम्हें (आयतें) पढ़कर सुना दूं कि तुम पर, तुम्हारे अल्लाह ने क्या ह़राम (अवैध) किया है? वो ये है कि किसी को भी अल्लाह का साझी न बनाओ। जिसकी हत्या अल्लाह ने अवैध किया है, उसे न मारो, जब तक कि उसकी हत्या विधि सम्मत न हो। अल्लाह ने तुम्हें इसका आदेश दिया है, जिससे तुम प्रज्ञावान बनो।''[2]

एक अन्य अवसर पवित्र कुरआन कहती है, ''जो अल्लाह के साथ किसी अन्य ईश्वर को नहीं पुकारते हैं और केवल मजहबी उद्देश्य को छोड़कर, ऐसे लोगों के प्राण नहीं लेते हैं जिन्हें अल्लाह ने पवित्र बनाया है, जो व्यभिचार नहीं करते हैं;- पर जो ऐसा करेगा, वह दंड का

---

[1] माइदा:33

[2] अल-अनाम: 151

भागीदार बनेगा और प्रलय (कयामत) के दिन उसका दंड दोगुना कर दिया जाएगा और वह नर्क में सदा के लिये यातना, अपमान सहता हुआ पड़ा रहेगा।"[3]

जैसा व्यक्तियों के प्रकरण में है, वैसा ही अंतर-राज्य संबंधों के विषय में भी है कि युद्ध न्याय, सत्य, विधि व मानव समाज के संरक्षण के लिये ही किया जा सकता है। जैसा कि पवित्र कुरआन में जंग के कारणों की मुख्य विषय-वस्तु बतायी गयी है, उसके अनुसार जंग अल्लाह के उद्देश्यों को पूरा करने के लिये होनी चाहिए। यह कारण इस्लाम के इतिहास में विभिन्न स्तरों पर तथा विभिन्न रूपों व प्रकारों में स्वयं ही परिलक्षित होती है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये मुसलमानों को पहले जंग की अनुमति दी गयी और फिर बाद में इसे अल्लाह के मार्ग में मजहबी दायित्व व कर्तव्य के रूप में आदेशित किया गया।

इस विषय पर प्रथम कुरआनी वचन जिसमें मुसलमानों को जंग की अनुमति दी गयी, उसमें कहा गया है, ''जो तुमसे जंग करते हैं, उनसे जंग करने की अनुमति दी जाती है, क्योंकि वे पापी हैं और वैसे भी अल्लाह तुम्हारी सहायता के लिये सर्व-सामर्थ्यवान है। ये वो लोग हैं जिन्हें बिना किसी कारण के इसलिये अधिकारों से वंचित कर उनके घरों से निकाल दिया गया है, क्योंकि वे कहते हैं 'अल्लाह मेरा स्वामी है।''[4] जंग की अनुमति दिये जाने को न्यायोचित ठहराते हुए कुरआन ने कहा, ''यदि अल्लाह ने लोगों के उस समूह को न रोका होता तो उन्होंने उन मठों, धर्मस्थानों, उपासनागृहों और मस्जिदों को ढहा दिया होता, जहां अल्लाह का नाम बहुतायत पुकारा जाता है।''[5] एक अन्य अवसर पर पवित्र कुरआन कहती है, ''हर बार वे जंग की आग भड़काते हैं, अल्लाह उसे बुझा देता है। पर तब भी वे धरती पर दुष्टता करने लगते हैं। अल्लाह उन्हें प्यार नहीं करता, जो दुष्टता करते हैं।"[6] सर्व-सामर्थ्यवान अल्लाह ने जिन लोगों को दूसरों को नियंत्रण में रखने के लिये चुना है, 'उन लोगों के समूह' से क्या अपेक्षा करता है?

पुस्तक कुरआन कहती है, "(वे हैं) वही जिन्हें यदि हम धरती पर स्थापित करेंगे तो वे नियमित नमाज स्थापित करेंगे, जकात देंगे और उचित के साथ रहेंगे, अनुचित से दूर रहेंगे।''[7]

आत्मरक्षा के लिये जंग की अनुमति प्रदान करने के कुछ माह पश्चात जंग को मजहबी कर्तव्य व दायित्व बनाने वाला अल्लाह का आदेश आया। इसमें कहा गया, ''अल्लाह के उद्देश्यों के लिये जंग करो। जो तुमसे लड़ते हैं, उनसे जंग करो, पर अपनी सीमा न लांघो, क्योंकि अल्लाह सीमा लांघने वालों को प्यार नहीं करता।''[8] इस आयत से जंग के अनुमन्य उद्देश्यों में नये तत्व जुड़ गये। जंग अल्लाह की राह में करना है। जंग केवल उन्हीं से करना है, जो पहले मुसलमानों के विरुद्ध जंग छेड़ते हैं। जंग करते समय अल्लाह द्वारा निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन नहीं होना चाहिए। जो इस सीमा का उल्लंघन करते हैं, उन्हें अल्लाह के कोप का भाजन बनना पड़ता है। इन बिंदुओं को स्पष्ट करते हुए कुरआन ने आगे कहा, ''और उन्हें जहां पाओ काट डालो, उन्हें उनके घरों से निकाल दो जहां से उन्होंने तुम्हें निकाला है। क्योंकि फ़ित्ना (उपद्रव) हत्या करने से भी बुरा है। पवित्र मस्जिद में उनसे जंग न करो, जब तक कि वे पहले जंग न करें। पर यदि वे तुमसे लड़ें तो काट डालो। अ-मुस्लिमों (काफिरों) का यही परिणाम है।''[9]

उपद्रव व अत्याचार को हत्या से भी अधिक बुरा बताने के पीछे पवित्र कुरआन का आशय व अभिप्राय क्या है? यह दंडाज्ञा विशेष रूप से कुरैशों द्वारा मुसलमानों को उनके पवित्र मस्जिद में नमाज पढ़ने का अधिकार देने से मना करने पर दी गयी थी और कुरैशों का यह अस्वीकार इस्लाम के विरुद्ध खुला युद्ध छेड़ने की घोषणा था। इस प्रकरण में अल्लाह के हस्तक्षेप का मुख्य बिंदु यह था कि मूर्तिपूजकों के पास मुसलमानों को पवित्र मस्जिद में मजहबी कर्तव्य निभाने से रोकने का कोई औचित्य नहीं था, क्योंकि मुसलमानों ने उन्हें अपनी परंपराएं व धार्मिक अनुष्ठान

---

[3] फुरकान: 68-69

[4] हज: 39-40

[5] हज: 40

[6] माइदा: 67

[7] हज: 41

[8] बकरा: 190

[9] बकरा: 191

करने से नहीं रोका था। कुरआन ने कहा, ''अब उन पर क्यों न यातना उतारे, जबकि वे उन्हें पवित्र मस्जिद (काबा) में जाने से रोक रहे हैं। वे तो उस काबा के संरक्षक भी नहीं हैं? उसका संरक्षक अल्लाह को मानने वालों के अतिरिक्त और कोई हो ही नहीं सकता, पर उनमें से अधिकांश यह समझते नहीं हैं।''[10]

पवित्र कुरआन ने उपद्रव व यंत्रणा पर और स्पष्ट व बिंदुवार आदेश दिया, "हे नबी! वे तुमसे पूछते हैं कि पवित्र मास में जंग कैसे करें? तुम उनको बता दो कि पवित्र मास में जंग करना घोर पाप है, किंतु अल्लाह की दृष्टि में अल्लाह के मार्ग में जाने से रोकना, अल्लाह को अस्वीकार करना, पवित्र मस्जिद की पहुंच से रोकना और मस्जिद के सदस्यों को निकालना उससे भी गंभीर पाप है। फ़ित्ना और यंत्रणा हत्या से भी गंभीर अपराध है।''[11]

कुरआन ने अनेक अवसरों पर और विभिन्न प्रकार व रूपों में अल्लाह के उद्देश्यों के लिये जंग करने की आवश्यकता पर बल दिया है। पवित्र कुरआन कहती है, ''तब अल्लाह के मार्ग में जंग करो और जान लो कि अल्लाह सबकुछ सुनता है, सबकुछ जानता है।"[12] मोमिन और काफिर में भेद करते हुए पवित्र कुरआन कहती है, ''जो अल्लाह में विश्वास करते हैं वो अल्लाह के उद्देश्य में जंग करते हैं और जो काफ़िर हैं, वे उपद्रव के लिए युद्ध करते हैं। तो शैतान के साथियों से जंग करो। निस्संदेह शैतान की चाल निर्बल होती है।''[13] इस पुस्तक ने बल देकर कहा है, ''अल्लाह की राह में जंग करो। यह उत्तरदायित्व केवल तुम पर है और मोमिनों को इसके लिये प्रेरित करो। संभव है कि अल्लाह काफ़िरों का बल तोड़ दे। अल्लाह ही सर्वाधिक समर्थ है और उसका दंड भी उतना ही कठोर है।"[14] साथ ही यह भी आदेश दिया गया, ''हे अल्लाह को मानने वाले लोगो! यदि तुम अल्लाह की सहायता करोगे तो वह तुम्हारी सहायता करेगा और तुम्हारे पांव सुदृढ़ता से जमायेगा।''[15]

मुसलमानों द्वारा मक्का से मदीना सफलतापूर्वक प्रवासन से इस्लाम को नष्ट करने की कुरैशों की आशा को गहरा धक्का लगा था। परिणामस्वरूप उन्होंने रेगिस्तान में यहां-वहां रह रहे नये-नये धर्मांतरित मुसलमानों पर अत्याचार करते हुए उन्हें सताना प्रारंभ कर दिया। पवित्र कुरआन ने कहा, ''तुम्हें हो क्या गया है, जो तुम अल्लाह के मार्ग में जंग नहीं करते। जबकि कितने ही निर्बल पुरुष, स्त्रियां और बच्चे हैं, जो गुहार रहे हैं कि हे अल्लाह! हमें इस स्थान से निकालकर उबार दे, जहां के निवासी अत्याचारी हैं और अपनी ओर से हमारे लिए किसी को खड़ा कर दे, जो हमारी रक्षा करे, अपनी ओर से किसी को ला दे जो हमारी सहायता करे।"[16] हुदैबिया के पश्चात मुसलमानों और मक्कावासियों के बीच दस वर्ष की एक संधि की गयी।

पर कुरैशों ने संधि के उपबंधों का उल्लंघन किया और रसूल की प्रतिष्ठा को आघात पहुंचाने एवं उन्हें मदीना से निकाल बाहर करने के लिये षडयंत्र किये। कुरआन मुसलमानों से पूछती है, ''क्या तुम उन लोगों से जंग नहीं करोगे, जिन्होंने अपने वचन भंग किये हैं और रसूल को निकाल बाहर करने का षडयंत्र किया है और जंग तो उन्होंने ही आरंभ किया है? क्या तुम उनसे भय खाते हो? नहीं, यदि तुम मोमिन हो तो तुम्हारे लिये उचित होगा कि तुम केवल अल्लाह से डरो।''[17]

तद्नुसार यह बताता है कि कुरआन द्वारा अनुमन्य जंग का प्रमुख उद्देश्य अल्लाह का उद्देश्य है। मानवीय दृष्टिकोण से यह अत्याचारी व आततायी लोगों द्वारा निर्बल, दुर्व्यवहार किये गये और उत्पीड़ित लोगों को मुक्ति दिलाने वाली पुकार थी। यह सामान्य रूप से मानवता के उद्देश्यों के लिये थी, न कि विशेष रूप से मुस्लिम समुदाय का उद्देश्य था। धार्मिक भेदभाव के बिना धर्मस्थलों को बचाना और दुष्टों से मानवजाति की रक्षा करना वो उद्देश्य थे जो वास्तव में सच्चे अर्थों में सार्वभौमिक एवं मानवीय महत्व व उपयोगिता वाले थे। इस पूरे प्रकरण में जोखिमवाद,

---

[10] अन्फाल: 34

[11] बकरा:217

[12] बकरा: 244

[13] निसा: 76

[14] निसा: 84

[15] मुहम्मद: 7

[16] निसा: 75

[17] तौबा: 13

सैन्यवाद, हठधर्मिता, राष्ट्रीय हितों, व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं एवं आर्थिक आवश्यकता से किसी प्रकार की समानता नहीं थी। पुस्तक कुरआन मानवजाति के समक्ष जंग के कारणों के औचित्य को आंकने के लिये सार्वभौमिक मान्यता व अनुप्रयोग की वस्तुनिष्ठ कसौटी को भी प्रस्तुत करती है। जंग की अनुमति केवल अत्याचार व आततायी बलों से लड़ने के लिये दी गयी है। वर्तमान समय की अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में क्रियान्वित करने के लिये जंग के कुरआनी उद्देश्यों की व्याख्या करते हुए डॉ हमीदुल्लाह ने अपने विद्वतापूर्ण अध्ययन 'द मुस्लिम कंडक्ट आफ स्टेट' में परिस्थितियों के उस समुच्चय को चिह्नित किया है, जिसके अंतर्गत मुस्लिम राज्य अपने प्रतिद्वंद्वियों के साथ जंग छेड़ सकता है। उनकी दृष्टि में जंग में तब कूदा जा सकता है, जब शत्रु ने मुसलमानों के क्षेत्र पर प्रत्यक्ष रूप से आक्रमण किया हो अथवा वास्तविक आक्रमण न करके भी असहनीय व उकसाने वाला व्यवहार कर रहा हो। दंडात्मक, प्रतिक्रियात्मक व निरोधात्मक उद्देश्यों के लिये भी जंग किया जा सकता है।

झगड़े का निपटारा होने तक की गयी व्यवस्था के भंग होने अथवा टिकाऊ शांति के लिये भी अस्थायी रूप से रोक दी गयी जंग को पुन: प्रारंभ किया जा सकता है। एक मुसलमान राज्य दूसरे राज्य में रह रहे उम्मा के लोगों से सहानुभूति दिखाते हुए भी सशस्त्र शत्रुता ठान सकता है, पर यह सामान्य नियम नहीं है, अपितु ऐसा करते समय योग्यता के आधार पर प्रत्येक प्रकरण की समीक्षा के बाद कदम उठाया जाना चाहिए।

अध्याय 4

युद्ध का ध्येय

जब आधुनिक सैन्य विचार के जनक क्लाजविट्ज ने युद्ध को 'अन्य साधनों द्वारा नीति के सातत्य के रूप में परिभाषित किया तो उन्होंने वास्तव में राजनीति शास्त्र व अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के विद्यार्थियों के समक्ष 'नीति' के संबंध में सिद्धांत विकसित करने की चुनौती प्रस्तुत की। क्लाजविट्ज ने इस प्रकार गाड़ी में घोड़ा लगा दिया और नीति-निर्माताओं को राजनीति के विज्ञान में गहन अनुसंधान करने को बाध्य किया।

यह 'नीति' नहीं थी, जिसने 'युद्ध' के अर्थ, क्षेत्र, सीमाओं व विस्तारों को परिभाषित करने की पहल की। इसके विपरीत 'युद्ध' ने 'नीति' को अपने मापदंड परिभाषित करने एवं निर्धारित करने के लिये बाध्य किया। राष्ट्रीय उद्देश्यों व लक्ष्यों, राष्ट्रीय हितों, राष्ट्रीय नीति व युद्ध के मध्य संबंधों को स्थापित करने में मानव मस्तिष्क को सैकड़ों वर्ष लगे तथा यह समझने में और भी अधिक समय लगा कि युद्ध नीति के अधीन होता है। तथापि, इस अवसर पर राजनीतिक वैज्ञानिक नीति को सिद्धांतपूर्ण बनाने के लिये उठ खड़े हुए और उन्होंने संक्षेप में विचार दिया कि नीति राष्ट्रीय हितों को प्राप्त करने के प्रयास का नाम है तथा कहा कि जब असंगत किंतु महत्वपूर्ण राष्ट्रीय हित दांव पर लगे तो युद्ध नीति का एक साधन बन गयी। यद्यपि, राष्ट्रीय हितों के निर्धारण के पीछे का औचित्य क्या था, वे यह बताने से चूक गये।

बर्नार्ड ब्रॉडी कहते हैं, ''राष्ट्रीय हित प्रकृति द्वारा निश्चित नहीं किये जाते हैं और न ही ये लक्ष्य की किसी कसौटी के सामान्य-स्वीकृत मानक द्वारा चिह्नित किये जा सकते हैं। ये तो बस उन विषयों पर दोषक्षम मानवीय निर्णय से उत्पन्न होते हैं, जिन पर राष्ट्र के भीतर सहमति सामान्यत: कम सर्वस्वीकार्यता वाली होती है।'' जैसा कि आज हम सबको ज्ञात है कि राष्ट्रीय हितों का निर्माण आवश्यक रूप से और तात्विक रूप से शांति के महत्व से होता है।

उसके ऐसा होने के कारण आज की अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में राष्ट्रीय हितों की अवधारणा का तार्किक परिणाम तनाव व युद्ध के रूप में आता है, न कि शांति, सद्भावना, न्याय एवं समझ के रूप में। वास्तव में राष्ट्रीय हित एक सदोष व कभी न समाप्त होने वाला ऐसा चक्र आरंभ करते हैं, जिसका सामान्य परिणाम 'युद्ध' होता है, न कि 'शांति'।

राष्ट्रीय हितों के इस दर्शन के विपरीत हमारे पास आधिकारिक रूप से कम से कम वह समानांतर विचारधारा तो है, जो अभिव्यक्त करता है कि युद्ध का परिणाम एक टिकाऊ व स्थायी शांति होना चाहिए। इस विचारधारा को मानने वाले सिद्धांतकार आदर्शवादी होते हैं तथा उनके पास अपने पक्ष को क्रियान्वित करने के लिये कोई कार्यप्रणाली नहीं होती है। लिडल हर्ट का प्रेक्षण है, "युद्ध का लक्ष्य शांति की अच्छी अवस्था होता है, भले ही यह आपके दृष्टिकोण से हो।'' ऐसा प्रतीत होता है कि इस सिद्धांत का प्रतिपादन करने में लिडल ने इस सरल नियम की अनदेखी की है कि शांति तात्विक रूप से द्विपक्षीय विषय होता है। यह कल्पनातीत है कि प्रतिस्पर्द्धी पक्षों में किसी प्रकार की सहमति, सामंजस्य अथवा संयोजन के अभाव में शांति रहेगी। सच तो यह है कि एक-पक्षीय शांति आरोपित करना राष्ट्रीय स्व-हित के बोध के लिये केवल एक प्रसिद्ध प्रक्रिया भर है, जिसमें उसी प्रकार की जटिलताएं और परिणाम होते हैं। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात जर्मनी पर आरोपित एक-पक्षीय शांति का परिणाम यह रहा कि 20 वर्ष भी नहीं हुआ होगा और यह मानवजाति के प्रति शांति व सुरक्षा लाने की अपेक्षा और अधिक रक्तपात व अभाग लेकर आया।

याल्टा सम्मेलन ने द्वितीय विश्वयुद्ध को समाप्त किया तथा युद्ध के बाद की स्थिति के लिये मित्र-राष्ट्रों की रणनीति तैयार की। अपर्याप्तता व अदूरदर्शिता वाली इस रणनीति की बहुत आलोचना हुई। राजनीति व युद्ध विषय के अन्य विद्यार्थियों जैसे ही जनरल फुलर भी इसके मुखर आलोचक रहे। उनका तर्क यह था कि मित्र-राष्ट्रों के नेताओं ने जर्मनी के अ-प्रतिबंधक आत्मसमर्पण सुनिश्चित कराने की बेदी पर टिकाऊ शांति के लक्ष्य को प्राप्त करने की महत्वपूर्ण आवश्यकता की बलि चढ़ा दी। यद्यपि महान सैन्य विचारकों के पास उनको सुझाव देने के लिये कुछ नहीं था। जब द्वितीय विश्व युद्ध थमने के निकट था तो मित्र-राष्ट्र युद्ध की चेष्टा में अपने-अपने राष्ट्रीय हितों को हवा देने लगे। प्रबुद्ध राष्ट्रीय हित जिससे निर्मित हुए थे, उस विषय में प्रत्येक पक्ष की अपनी-अपनी व्याख्या थी। रूस ने यूरोप के हृदय को जीतने में अपना हित देखा तो मित्र-राष्ट्र जर्मनी की सैन्य शक्ति को नष्ट करने में अपना हित देख रहे थे।

जब कभी यूरोपीय राष्ट्रों ने एक-दूसरे को नष्ट करने के साधनों का विकास किया, तो उन्हें शांति की भारी चिंता हुई। इस प्रकार का वातावरण तब भी बना, जब विध्वंसकारी युद्ध समाप्त हुआ और हिरोशिमा व नागासाकी पर परमाणु बम गिराया गया। किंतु यह बहुत दिनों तक नहीं चला। यूरोपियों को शीघ्र ही समझ में आ गया कि जिन उन शस्त्रों को कभी सम्पूर्ण और अंतिम माना जाता था, उनसे रक्षा के लिये साधन हैं। ऐसा होते ही उनके सैन्य संचालन केंद्रों व विध्वंसक तत्वों ने पुन: समझदारी वाले विचारों को पीछे छोड़ दिया। 'दो देशों के मध्य संबंध सुधार व निवारण' का वर्तमान युग इसी प्रकार के उद्देश्यों को रेखांकित करता है। मानव मस्तिष्क में शांति का विचार केवल तब आता है, जब 'आत्महत्या' और 'सह-अस्तित्व' के मध्य विकल्प चुनना हो। उनका जन्म स्वीकृत अथवा स्थायी नीति या सिद्धांत से नहीं होता, वरन् उनकी सह-उत्पत्ति संकटकाल में होती है। वे अतीत में समय की कसौटी पर खरे नहीं उतरे हैं और न ही वर्तमान में वैश्विक शांति के लिये टिकाऊ परिणाम देने वाले हैं। वास्तव में वे तो भविष्य में भी उपयुक्त भूमिका निभाने योग्य नहीं हैं।

इतिहास में अनेक उदाहरण हैं, जो बताते हैं कि तथाकथित संधियां व रक्षात्मक गठबंधन केवल युद्ध को स्थायी बनाने के लिये की गयी थीं। हिटलर ने लिखा है, ''ऐसा कोई भी गठबंधन जिसका उद्देश्य युद्ध लड़ना न हो, मूर्खतापूर्ण व आधारहीन होता है।'' द्वितीय विश्वयुद्ध का बीज तभी पड़ गया था, जब प्रथम विश्व युद्ध को समाप्त करने के लिये वर्सेल्स की संधि हुई। 1938 में हिटलर ने तब अपने सिद्धांत का प्रदर्शन किया, जब उसने रूस के साथ समझौता किया और फ्रांस को जीतने के बाद उसी रूस पर आक्रमण कर दिया। आज के वो समस्यापरक बिंदु जो अगले युद्ध को जन्म दे सकते हैं वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उस याल्टा सम्मेलन के परिणाम हैं, जिसमें मित्र-राष्ट्रों के नेताओं ने युद्ध के बाद के विश्व का मानचित्र खींचा था। इतिहास के आधुनिक काल में भारत ने उस छत्र के अंतर्गत रूस के साथ 'मित्रता' की संधि की है, जिसके अंतर्गत उसने पाकिस्तान पर आक्रमण किया और विभाजित किया। 'कूटनीति' की इस आधुनिक अवधारणा पर प्रकाश डालने के लिये कई अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं। पवित्र कुरआन ने मुसलमानों को जंग का आश्रय लेने की अनुमति देने के कुछ ही समय बाद अल्लाह की जंग का उद्देश्य मूर्तिपूजकों से साथ जंग करना बता दिया था।

कुरआन ने आदेश दिया, ''उनसे लड़तो रहो, जब तक कि फ़ित्ना और अत्याचार समाप्त न जाए और न्याय व अल्लाह में विश्वास न आ जाए।''[1] ऐसे ही निर्देश बद्र की जंग समाप्त होने के बाद दोहराये गये। इस अवसर पर पवित्र कुरआन ने निर्देश दिया, ''उनसे लड़तो रहो, जब तक कि फ़ित्ना और अत्याचार समाप्त न हो जाए और न्याय न व्याप्त हो जाए तथा सबमें और सब स्थान पर अल्लाह में विश्वास न आ जाए।"[2] इन आदेशों ने इस जंग के पीछे के अल्लाह के पूर्ण व अंतिम उद्देश्यों की नींव रख दी, जिसके अनुसार जंग का ध्येय शांति, न्याय और अल्लाह में विश्वास स्थापित करना होता है। जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया है कि इस प्रकार की स्थितियों के निर्माण के कारण अत्याचार व उत्पीड़न का अंत करना समय की मांग थी। प्रकृति में तो अत्याचार व उत्पीड़न के उन्मूलन के अनेक रूप थे, पर तात्विक रूप से इसका अभिप्राय पवित्र मस्जिद में मुसलमानों के नमाज पढ़ने के अधिकार को पुनर्स्थापित करना था।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के प्रारंभिक स्तरों पर पवित्र कुरआन ने मूर्तिपूजकों को सुसंगत व शांतिपूर्ण स्थितियों के निर्माण में सहयोग व योगदान के लिये उदारवादी अनुमति व छूट दी। इस अवधि में जंग की स्थिति को समाप्त करने के अवसर को भुनाने के लिये बाध्य करने हेतु मोमिनों पर अनेक संतुलन व नियंत्रण थोपे गये। मोमिनों को निर्देश दिया गया कि प्रतिद्वंद्वियों द्वारा शत्रुता समाप्त करने अथवा संधि करने के प्रत्येक प्रयास में वे सहयोगी दृष्टिकोण अपनायें। कुरआन ने निर्देश दिया, ''यदि वे रुक जाते हैं तो उनके प्रति शत्रुता का भाव समाप्त कर दो, केवल उन्हें छोड़कर जो अत्याचार कर रहे हों।''[3] इसमें आगे बल देकर कहा गया, ''हे मोमिनो! उनसे उस समय तक जंग करो, जब तक कि फ़ित्ना (अत्याचार व उपद्रव) समाप्त न हो जाए और जब तक कि प्रत्येक व्यक्ति में और प्रत्येक स्थान पर केवल अल्लाह का मजहब व्याप्त न हो जाए। तो यदि वे (अत्याचार से) रुक जाएं तो अल्लाह उनके कर्मों को देख रहा है। यदि वे अल्लाह को न स्वीकार करें, तो निश्चिंत रहो अल्लाह तुम्हारा रक्षक है। अल्लाह ही तुम्हारा सर्वश्रेष्ठ रक्षक और तुम्हें सहायता करने वाला है।''[4] पवित्र कुरआन ने यह आदेश भी दिया, ''यदि वे रुक

---

[1] बकरा: 193

[2] अन्फाल: 39

[3] बकरा: 193

[4] अन्फाल: 39-40

जाएं, अल्लाह को मान लें तो अल्लाह सदा क्षमा करने वाला और दयावान् है।"[5] इसका आशय है कि उस स्थिति में शत्रु के प्रति कोई द्वेष नहीं था। मुसलमानों को अपने अल्लाह के सदा क्षमाशील व अति-दयालु प्रकृति का अनुसरण करते हुए उनके अपराधों को क्षमा कर देना था। इसी प्रकार कुरआन ने मोमिनों को आदेश दिया, "किंतु यदि शत्रु शांति की ओर बढ़े तो तुम भी शांति की ओर बढ़ो। अल्लाह में विश्वास रखो, क्योंकि केवल वही है जो सबकुछ सुनता है और सबकुछ जानता है। यदि वे छल करने की मंशा रखेंगे तो निश्चित ही अल्लाह उनके लिये पर्याप्त है।"[6]

शत्रु के शांति की ओर बढ़ने पर उपयुक्त व्यवहार करने के अल्लाह के कथन से उनके साथ संधि व गठबंधन करने को लेकर प्रश्न उठे, जिसके लिये एक सुस्पष्ट सिद्धांत व कार्यप्रणाली निर्धारित की गयी। इस विषय पर पवित्र कुरआन ने मुसलमानों को न्याय, समानता व पारस्परिक आदान-प्रदान पर आधारित सिद्धांत प्रदान किया। यह वो सिद्धांत था जो मनुष्य व अल्लाह के बीच समझौते पर भी उतना ही सम्प्रयुक्त होता है, जितना कि राष्ट्रों व राज्यों के मध्य संधियों व गठबंधनों पर। मनुष्य और अल्लाह के मध्य समझौते के विषय में पवित्र कुरआन इस्राइलियों को दिये गये अल्लाह के वचन का स्मरण कराते हुए कहती है, ''हे इस्राइल के बच्चों! मेरे (अल्लाह के) उस विशेष उपकार का स्मरण करो, जो मैंने तुम पर किया। मुझे दिया गया वचन पूरा करो, मैं तुम्हें अपना दिया वचन पूरा करूंगा तथा मुझी से डरो।"[7] जिन्होंने अल्लाह से समझौता करने के बाद उसे तोड़ा और विध्वंस व दुष्टता करने लगे, कुरआन ने उनको चेतावनी दी। कुरआन कहती है, ''एक बार अल्लाह से समझौता करने के बाद जो इसे तोड़ते हैं और वो अल्लाह ने जो करने को कहा है उसे नहीं करते हैं, धरती पर दुष्टता करते हैं, उनको इसका बुरा परिणाम भोगना होगा।''[8] जैसा कि मनुष्य और अल्लाह के मध्य समझौते का प्रकरण है, वैसे ही अंतर-राज्यीय समझौतों में भी संधियों का उत्तरदायित्व व विनिमय द्विपक्षीय होते हैं। यदि मूर्तिपूजक समझौते के उपबंधों का उल्लंघन करते हैं तो मुसलमान अपनी ओर समझौते में दिये गये वचन को पूरा नहीं कर सकते हैं। वे अपने वचन को तभी पूरा कर सकते हैं, जब सामने वाला पक्ष भी समझौते का वैसा ही आदर करे। अंतर-राज्यीय समझौतों के विषय में उनको अल्लाह की ओर से आदेश दिया गया है, ''जब तक तुम इसे सत्य मानोगे, वो भी इसे सत्य मानेंगे। क्योंकि अल्लाह सच्चाई को प्यार करता है।''[9] उन मूर्तिपूजकों का क्या, जिन्होंने विनियम के सिद्धांत को तोड़ा था और अपनी संधियां समाप्त कर दी थीं?

कुरआन ने इस पर मुसलमानों से कहा है, ''ये वही लोग हैं, जिनके साथ तुमने समझौता किया था, पर वे प्रत्येक बार अपना वचन भंग कर देते हैं और अल्लाह से नहीं डरते हैं। ऐसे लोग जब मिलें तो उनसे लड़कर उन पर नियंत्रण करो, उन्हें दंड दो, जिससे कि जो उनके साथ हैं उनको सबक मिले।''[10] यद्यपि कुरआन ने मुसलमानों को अनुमति दी कि यदि उन्हें संदेह हो कि मूर्तिपूजक द्रोह करेंगे तो उनके साथ की गयी संधियों को समाप्त कर दो। इसमें कहा गया, ''यदि तुम्हें किसी समूह से द्रोह (संधि भंग करने) का भय हो तो तुम बराबरी के आधार पर उनसे की गयी संधियों को तोड़ दो। क्योंकि अल्लाह द्रोहियों से प्रेम नहीं करता।"[11] बाद में एक अवसर पर पवित्र कुरआन ने आदेश दिया, ''तो यदि वे वचन देने के बाद भी अपनी शपथ तोड़ दें, तुम्हारे मजहब पर ताना मारें, तो ऐसे काफिरों के मुखिया से जंग करो और इस प्रकार उन्हें रोको। क्योंकि उनकी दृष्टि में शपथ का कोई मोल नहीं।"[12]

उपरोक्त नीति 622 से 629 ईस्वी के लगभग 8 वर्ष की अवधि तक प्रभावी रही। इस अवधि में कुछ मूर्तिपूजक जनजातियां मुसलमानों से की गयी संधियों के प्रति प्रतिबद्ध रहीं, जिससे मुसलमान भी संधि के बंधों व उपबंधों का पालन उसकी मूल भावना में करते रहे। यद्यपि उनमें से अधिकांश प्रत्येक बार कठिन स्थिति से समय पर बच निकलने के लिये संधि करते और फिर जैसे ही उनको मुसलमानों पर बढ़त पाने अथवा हानि पहुंचाने का अवसर मिलता तो वे समझौते को छोड़ देते। इतनी लंबी सहनशीलता के बाद अल्लाह ने अंततः इस प्रकार के असंतुष्ट और द्रोही समूहों से निपटने का आदेश निर्गत किया। यह निर्णय किया गया कि अब उनके साथ हुई संधियों को लेकर मुसलमानों पर

---

[5] बकरा: 192
[6] अन्फाल: 61-62
[7] बकरा: 40
[8] बकरा: 27
[9] तौबा: 1
[10] अन्फाल: 56-57
[11] अन्फाल: 54
[12] तौबा: 12

कोई उत्तरदायित्व नहीं है और यह भी निर्णय हुआ कि ऐसी समस्त संधियां समाप्त कर दी जाएं। हिजरत के नौवें वर्ष आये अल्लाह के आदेश में लिखा गया है, ''अल्लाह तथा उसके रसूल की ओर से उस संधि से मुक्त होने की घोषणा है, जो तुमने मूर्तिपूजकों के साथ की है।''[13] इस संबंध में औपचारिक आदेश तब आया, जब इसके कुछ समय पश्चात मक्का में तीर्थयात्रा के लिये अरब की जनजातियां जुटीं। इसमें कहा गया, ''महा ह़ज के दिन एकत्रित लोगों के लिये अल्लाह और उसके रसूल की ओर से सार्वजनिक सूचना है कि अल्लाह और उसके रसूल मूर्तिपूजकों के साथ किये गये सभी समझौतों को निरस्त करते हैं।[14]

मूर्तिपूजकों के साथ तुमने जो समझौता किया था, उसे निरस्त किया जाता है और चार मास की कृपा-अवधि दी जा रही है, जिसमें वे अपनी रणनीति पुन: बना सकें। कुरआन ने कहा, ''हे काफ़िरो! तुम धरती पर चार मास स्वतंत्र होकर होकर घूम-फिर लो, पर यह जान लो कि तुम अल्लाह को निष्फल नहीं कर सकते। जो अल्लाह को नहीं मानेंगे, अल्लाह उन्हें अपमानित करेगा।"[15] पवित्र कुरआन ने निर्देशित किया कि यदि वे इस समय का लाभ उठाने में विफल रहते हैं तो 'जहां पाओ, वहीं मूर्तिपूजकों से लड़ो और उन्हें काट डालो।'[16] यद्यपि सर्व-सामर्थ्यवान अल्लाह ने एक अवसर दिया और कहा कि जो विश्वासपूर्वक अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करते हैं, उनके साथ अवधि समाप्त होने तक गठबंधन बनाये रखें। अल्लाह ने आदेश दिया, "वे मूर्तिपूजक जिनके साथ तुमने संधि की है और जिन्होंने तुम्हारे साथ संधि निभाने में कोई कमी नहीं की है और न ही तुम्हारे विरुद्ध किसी की सहायता की है, उनसे संधि की अवधि पूरी होने तक निभाओ। निश्चित ही अल्लाह आज्ञाकारियों से प्रेम करता है।"[17] इन आयतों ने मुसलमानों को उनकी संधि की प्रतिबद्धताओं को संविदा अवधि तक पूरा करने का आदेश दिया, पर उन्हें किसी भी परिस्थितियों में संधि को दोबारा न करने की चेतावनी दी।

इन निर्णयों के पीछे के औचित्य की व्याख्या करते हुए कुरआन ने कहा, ''जिनसे तुमने पवित्र मस्जिद (काबा) के पास संधि की थी उन्हें छोड़कर, इन मुश्रिकों (मूर्तिपूजकों) की कोई संधि अल्लाह और उसके रसूल के साथ कैसे हो सकती है? तो जब तक वे तुम्हारे प्रति सच्चे रहें, तो तुम भी उनके लिए सीधे रहो। वास्तव में अल्लाह आज्ञाकारियों से प्रेम करता है।''[18] इन निर्देशों के अनुसार बनू हम्ज़ा और बनू क़िनाना की वो जनजातियां जिन्होंने पवित्र मस्जिद के समीप संधि की थी और निष्ठापूर्वक संधि के बंधनों का पालन किया था, उन्हें छोड़ दिया गया और उनकी सच्चाई का पूरा लाभ दिया गया। पवित्र कुरआन ने इस बिंदु पर आगे कहा, ''कैसे (इस प्रकार का गठबंधन हो सकता है), और उनकी संधि कैसे रह सकती है, जबकि वे यदि तुम पर अधिकार पा जाएं, तो किसी संधि और किसी वचन का पालन नहीं करेंगे। वे तुम्हें अपने शब्दों से बहका देते हैं, पर उनके हृदय से वे तुम्हारे विरोधी हैं। उनमें से अधिकांश विद्रोही और दुष्ट हैं।"[19]

कुरआन ने उन पर अपना निर्णय दिया, ''उन्होंने अल्लाह की आयतों के बदले तनिक मूल्य क्रय कर लिया और लोगों को अल्लाह के मार्ग से रोक दिया। उन्होंने जो कार्य किया है, वो वास्तव में पाप है। वह किसी मोमिन के विषय में किसी संधि और वचन का पालन नहीं करते! ये वही हैं, जिन्होंने सारी सीमाओं का उल्लंघन किया है।"[20]

यद्यपि, कुरआन ने उन लोगों के करुणा और क्षमा का द्वार खोला था, जिन्होंने अंतर्मन से प्रायश्चित किया। पवित्र कुरआन कहती है, ''यदि तब तुम क्षमा याचना कर लो, यही तुम्हारे लिए उत्तम है और यदि तुमने अस्वीकार किया, मुंह फेरा, तो जान लो कि तुम अल्लाह को निष्फल नहीं कर पाओगे। उनके लिये कठोर दंड की घोषणा करो, जो इस्लाम को मानने से अस्वीकार करते हैं।"[21] साथ ही इसमें कहा गया,

---

[13] तौबा: 1
[14] तौबा: 3
[15] तौबा: 2
[16] तौबा: 5
[17] तौबा: 4
[18] तौबा: 7
[19] तौबा: 19
[20] तौबा: 9-10
[21] तौबा: 3

''जब पवित्र मास बीत जाएं तो मूर्तिपूजकों की घात में रहो, उन्हें जहां पाओ वहीं पकड़ो, घेरो और उनकी हत्या कर दो। यदि वे प्रायश्चित करें और नियमित नमाज पढ़ें, नियमित जकात दें तब उन्हें छोड़ो। क्योंकि अल्लाह सदा क्षमाशील, सर्वाधिक दयालु है।"[22] एक अन्य अवसर पर कुरान कहती है, ''किंतु वैसे भी, यदि वे (शिर्क अर्थात अल्लाह को न मानने के अपराध से) प्रायश्चित करें, नियमित नमाज पढ़ें और नियमित जकात दें तो वे तुम्हारे मजहबी बंधु हुए। इस प्रकार की बातों को जो समझते हैं, उनके लिये हम विस्तृत रूप से आयतों का वर्णन कर रहे हैं।"[23]

यह स्मरण रहे कि लगभग 8 वर्षों तक मूर्तिपूजक मुसलमानों केए पवित्र मस्जिद में जाने के अधिकार को अस्वीकार करते रहे और उन्हें उसमें नमाज पढ़ने से रोकते अस्वीकार करते रहे। जब मुसलमानों ने मक्का जीत लिया, तो भी मूर्तिपूजकों ने मक्का जाना और वहां पर अपने धार्मिक अनुष्ठान करना निरंतर रखा और इसके लगभग एक वर्ष के पश्चात अल्लाह की घोषणा ने उनकी इस परंपरा को प्रतिबंधित कर दिया। कुरआन ने आदेश दिया, ''जो अल्लाह को एकमात्र ईश्वर नहीं मानते, वे अल्लाह के मस्जिद में जाने अथवा वहां रहने योग्य नहीं हैं। उनको उसकी देखभाल करने का अधिकार नहीं है। क्योंकि वे तो स्वयं ही अपने विरुद्ध कुफ्र (इस्लाम को न मानने) के साक्षी हैं। ऐसे लोगों के पुण्य कार्य व्यर्थ हैं और वे सदा-सदा के लिये नर्क की आग में जलते रहेंगे।"[24]

पवित्र कुरआन आगे कहती है, ''अल्लाह की मस्जिद में केवल वही जा सकते हैं, वही उसका अनुरक्षण कर सकते हैं जो अल्लाह व प्रलय का दिन (कयामत) में विश्वास करते हैं, नियमित नमाज पढ़ते हैं, नियमित जकात देते हैं और अल्लाह के अतिरिक्त किसी से भयभीत नहीं होते। यही वो लोग हैं, जिनसे सत्य के मार्ग पर होने की अपेक्षा की जाती है।''[25] सर्व-सामर्थ्यवान अल्लाह ने मोमिनों से कहा, ''हे अल्लाह को मानने वालो! मूर्तिपूजक गंदे लोग हैं, अत: इस वर्ष के पश्चात् वे पवित्र मस्जिद (काबा) के समीप भी न आने पायें।''[26] चूंकि मक्का में सम्मिलन से उन लोगों के व्यापार व वाणिज्य में लाभ होता था, तो कुरआन ने कहा कि मूर्तिपूजकों के न आने से होने वाली आर्थिक हानि का भय अपने मन में न पालो। कहा गया, ''यदि अल्लाह चाहेगा तो शीघ्र ही तुम्हें धनी बनायेगा, क्योंकि वो सबकुछ जानता है, वो सर्वज्ञानी है।"[27]

अरब में निवास करने वाले ईसाइयों व यहूदियों समेत जिन लोगों ने भी इस्लाम स्वीकार नहीं किया, अंतिम चरण में उनसे कहा गया कि उनके पास या तो 'इस्लाम की अधीनता स्वीकार करने अथवा जंग का सामना करने' का विकल्प है। उनसे कहा गया कि शरणागत होने के प्रतीक के रूप में वे इस्लामी राज्य को 'जजिया' दें। तकनीकी भाव में 'जजिया' का मूल अर्थ 'क्षतिपूर्ति' है और यह कर उन पर लगाया जाता था, जिन्होंने इस्लाम स्वीकार नहीं किया, पर इस्लामी राज्य में रहने को इच्छुक थे और अपने अंतकरण की व्यक्तिगत स्वतंत्रता चाहते थे। जैसा कि अल्लामा अब्दुल्ला यूसुफ अली ने व्याख्या की है कि जजिया केवल शारीरिक रूप से सक्षम पुरुषों पर लगने वाला व्यक्ति कर था जो आंशिक रूप से प्रतीकात्मक और आंशिक रूप से सैन्य सेवा के विनिमय के लिये था। किंतु इसकी राशि छोटी थी और इसमें भी अनेकों प्रकार की छूट थी तो इसका प्रतीकात्मक गुण ही प्रधान रहा। पवित्र कुरआन ने आदेश दिया है, ''उनसे जंग करो जो न तो अल्लाह में विश्वास लाते हैं, न कयामत में उनका विश्वास है, न ही अल्लाह और उसके रसूल द्वारा वर्जित (हराम) घोषित किये गये कार्यों को करने से बचते हैं, न सत्य के मजहब इस्लाम छोड़करको स्वीकार करते हैं तो (भले ही वे) इस पुस्तक में उल्लखित लोगों में से हैं, जब तक कि वे शरणागत होने की इच्छा के साथ जजिया न दें और स्वयं को पराजित न अनुभव करें।"[28]

जंग के लक्ष्यों पर अल्लाह के निर्देशों में 'छिपे हुए' शत्रुओं अर्थात बहुरूपियों के प्रति मुस्लिम नीति भी आती है। उहुद में इन बहुरूपियों द्वारा किये गये द्रोह के कारण मुसलमान विपत्ति में पड़ते-पड़ते बचे थे और ऐसे द्रोहियों से कैसे निपटना है, इस पर एकमत नहीं था।

---

[22] तौबा: 5
[23] तौबा: 11
[24] तौबा: 17
[25] तौबा: 18
[26] तौबा: 28
[27] तौबा: 28
[28] तौबा: 29

अल्लाह का आदेश आया, ''तुम्हें क्या हुआ है कि दुविधावादियों (मुनाफ़िक़ों) के विषय में दो पक्षों में बंट गये हो? जबकि अल्लाह ने उनके (बुरे) कार्यों के कारण उनमें घबराहट उत्पन्न कर दी है। जिन्हें अल्लाह ने मार्ग से च्युत कर दिया हो, क्या वो कभी मार्ग पायेंगे? जिसे अल्लाह ने मार्ग से हटा दिया है, वह कभी मार्ग नहीं पायेगा।"[29] पवित्र कुरआन ने मुसलमानों को दुविधावादियों की मंशा पर यह कहते हुए सचेत किया, ''हे मोमिनो! वे तो कामना ही यही करते हैं कि उन्हीं के समान तुम भी काफिर हो जाओ और उन्हीं की भांति हो जाओ। अतः उनमें से किसी को मित्र न बनाओ, जब तक कि वे अल्लाह के मार्ग पर न चल पड़ें।''[30] उनके लिये क्या नीति हो, इस पर पुस्तक कुरआन दो वैकल्पिक कार्रवाइयों का सुझाव देती है। पहला तो यह परामर्श देती है कि जब तक कि काफिर अल्लाह के मार्ग पर न चल पड़ें (और जो हराम है वह करना छोड़ न दें, मोमिन उनमें से किसी को भी मित्र नहीं बनायें), [31] अर्थात यह कि जब तक कि वे हार न मान लें तथा आदेशों का उल्लंघन करना न बंद कर दें। दूसरा यह कि यदि वे मजहब छोड़ देते हैं और भाग जाते हैं, तो कुरआन का आदेश है 'उन्हें पकड़ो और जहां पाओ वहीं काट डालो।'[32]

इन नियमों के साथ क्षमादान के लिये दो अपवाद भी छोड़े गये। पहला अपवाद उन दुविधावादियों (इस्लाम छोड़ने वालों) के लिये था, जो किसी ऐसे समूह में सम्मिलित हो गये हों जिनके साथ मुसलमानों ने शांति संधि की हो। दूसरा अपवाद यह था कि ऐसे लोग जो तुम्हारे पास इस स्थिति में आयें कि उन्हें तुमसे भी युद्ध करने में संकोच लग रहा हो और तुम्हारे साथ मिलकर उन्हें अपनी जाति के लोगों के विरुद्ध जंग करने में भी संकोच हो।''[33]

जिन लोगों को क्षमादान दिया जा सकता है, उनके इन दो वर्गों के विपरीत एक तीसरा वर्ग भी था जिसे सर्वाधिक खतरनाक माना गया और उनके साथ कठोरता से निपटा गया। यह वर्ग वो था जिसने एक ओर मुसलमानों का विश्वास प्राप्त करते रहने और दूसरी ओर अपने लोगों में भी विश्वस्त बने रहने के लिये जोड़-तोड़ किया तथा यदि उनका स्वार्थ सिद्ध हो रहा हो तो वे दोनों में से किसी भी पक्ष के साथ विश्वासघात करने को तैयार थे। ऐसे लोगों से निपटने के लिये पवित्र कुरआन ने निर्देश दिया, ''यदि वे तुमसे दूर नहीं होते और न ही तुम्हें शांति का आश्वासन देते हैं, न अपना हाथ रोकते हैं तो उन्हें पकड़ो और जहां पाओ उनकी हत्या कर दो। हमने तुम्हें उनके विरुद्ध स्पष्ट युक्ति बतायी है।"[34] ये निर्देश हमें आज के छिपे हुए शत्रुओं के लिये उपयुक्त नीति व रणनीति बनाने का आधार प्रदान करती है। ये छिपे हुए शत्रु स्वयं को राज्य-विरोधी तत्वों, शत्रु के एजेंटों, देशद्रोहियों, मत प्रचारकों और पक्षपात करने वालों के रूप में मिलते हैं। यदि वे खतरनाक षडयंत्रों में डटे रहें तो उनके साथ वैसे ही निपटा जाए, जिस प्रकार ज्ञात अथवा घोषित शत्रु से निपटा जाता है। पुन: संक्षेप में दोहराते हुए कहना है कि कुरआनी परिप्रेक्ष्य में जंग के लक्ष्य शांति, न्याय व मजहब के उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये अत्याचार व आततायी बलों को नष्ट करना आवश्यक है। आविर्भाव के प्रारंभिक स्तरों पर पवित्र कुरआन ने जंग की स्थिति को समाप्त करने और शांति व सद्भाव की दशा का निर्माण करने में योगदान देने के उद्देश्य से उनको बुलाने के लिये शत्रुओं के प्रति उदार अनुमोचन (छूट) दिये थे। संधियों व गठबंधनों को करते समय समानता व पारस्परिक विनिमय की विधि अपनायी गयी। किंतु जब शत्रु अल्लाह के अनुमोचन को एक के बाद एक अस्वीकार करता गया, तो कठोर कदम उठाना आवश्यक हो गया। जिन लोगों ने मुसलमानों के साथ द्रोह किया था, उनसे की गई संधि के वचन तोड़ने की अनुमति दी गयी, पर जो मुसलमानों के प्रति निष्ठावान व सच्चे रहे उनके साथ संधि के वचन निभाने का कठोर आदेश दिया गया। दया, करुणा व क्षमाशीलता के लिये द्वार सदा खुले रखे गये और जिन्होंने शुद्ध अंत:करण से प्रायश्चित किया उन्हें क्षमा कर दिया गया। निर्णायक स्तर पर मूर्तिपूजकों को पवित्र मस्जिद में उनके अनुष्ठान करने से रोक दिया गया और जिन्होंने इस्लाम स्वीकार नहीं किया उन्हें या तो इच्छा से अधीनता स्वीकार करने के प्रतीक के रूप में जजिया कर का भुगतान करने अथवा जंग का सामना करने को कहा गया। जिन्होंने जजिया कर का भुगतान किया, उन्हें मुस्लिम राज्य का संरक्षण और धर्म की स्वतंत्रता प्रदान की गयी।

---

[29] निसा: 88

[30] निसा: 89

[31] निसा: 89

[32] निसा: 89

[33] निसा: 90

[34] निसा: 91

अध्याय 5

युद्ध की प्रकृति व आयाम

पारंपरिक चिंतन में युद्ध की प्रकृति व प्रारूप के विषय में कहा जाता है कि यह सतत् परिवर्तन व उद्विकास की अवस्था में है। युद्ध के इतिहास व सिद्धांत के क्रमिक-विकास व प्रक्रियात्मक प्रगति के विभिन्न स्तरों पर सैन्य विचारकों ने युद्ध की प्रकृति, प्रारूप, आयामों व लक्षणों पर पृथक-पृथक सिद्धांत प्रतिपादित किये हैं। लगभग 18वीं सदी तक युद्धशास्त्र के विद्यार्थी युद्ध के भौतिक आयामों से ही परिचित थे। वैसे पिछली दो शताब्दियों से सैन्य सिद्धांतकारों व उसके प्रसिद्ध अभ्यासकर्ताओं दोनों ने युद्ध की योजना व संचालन में सन्निहित नैतिक व मनोवैज्ञानिक कारकों को भी पहचानना प्रारंभ कर दिया था। जैसे-जैसे समय बीता, इन कारकों ने और अधिक महत्व धारण किया। उत्तरोत्तर मनोवैज्ञानिक कारक को निर्णायक तत्व के रूप में देखा जाने लगा। युद्ध के भौतिक आयामों को द्वितीयक महत्व की स्थिति में ले जाकर रख दिया गया, क्योंकि उपयुक्त नैतिक व मनोवैज्ञानिक आधारों के बिना वे अर्थहीन पाये गये।

यूरोप के सैन्य इतिहास में नेपोलियन अग्रणी था, जिसने युद्ध में भौतिक कारण की अपेक्षा इसके मनोवैज्ञानिक कारक के प्रधानता पर बल दिया और इसका प्रदर्शन किया। बाद में क्लाजविट्ज ने इसे सिद्धांत रूप में गढ़ा। लिडल हर्ट ने ईसाई धर्मयुद्ध के तत्वों को स्थापित किया और उन्होंने मनोवैज्ञानिक कारक को युद्ध के सर्वाधिक निर्णायक तत्व के रूप में देखा। अनेक क्षेत्रों में क्लाजविट्ज के मुखर आलोचक रहे हर्ट ने युद्ध के नैतिक कारकों को सामने लाने में उनके योगदान को मान्यता दी। लिडेल हार्ट ने स्वीकार किया, "युद्धशास्त्र में क्लाजविट्ज का सबसे बड़ा योगदान युद्ध के मनोवैज्ञानिक कारकों पर बल देना है। उस समय प्रचलित भौगोलिक विचारधारा के विरुद्ध मुखर होते हुए उन्होंने दर्शाया कि युद्ध की परिचालात्मक धारा व कोण की अपेक्षा इसकी मानवीय भावना निश्चित रूप से अधिक महत्वपूर्ण है।"

तब से मनोवैज्ञानिक युद्धक अभियान वास्तव में युद्ध का विशिष्ट व स्वीकृत शाखा बन गया। इस विषय पर और भी अध्ययन किये गये हैं। कर्नल बर्न्स ने अपनी पुस्तक 'द आर्ट ऑफ वार ऑन लैण्ड' में चार पक्षों के ऐसे समूह को चिह्नित किया है, जो उनकी दृष्टि में युद्ध में विजय के लिये संयुक्त हुईं। बर्न्स के ये पक्ष जिसके विषय में उन्होंने कोई सापेक्ष महत्व नहीं जोड़ा, वे थे कमांडर, सेना, मनोबल व संसाधन। कमांडर की शक्ति उसके व्यक्तित्व, ज्ञान व योजना की क्षमता से निर्धारित होती है, जबकि सेना की शक्ति उसके प्रशिक्षण व तकनीकी दक्षता से निश्चित होती है। युद्ध में विजय की इच्छाशक्ति सेना में भरे गये मनोबल से आती है और संसाधनों में सेना की संख्या, आयुद्ध, आपूर्ति और परिवहन सम्मिलित होते हैं। बर्न्स ने इन पक्षों की तुलना रस्सी के धागे से की है और सूत्र दिया कि रस्सी की शक्ति सभी धागों की सम्मिलित शक्ति से निर्धारित होती है। संभव है कि कोई सेना किसी एक पक्ष में दुर्बल हो, किंतु समुच्चय में वह सुदृढ़ हो जाती है। युद्ध में विजय उस 'रस्सी' की कुल शक्ति होती है, न कि विशेष पक्ष की शक्ति।

विज्ञान, तकनीक और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के विषय में क्रमिक विकास के साथ ही युद्ध की प्रकृति व आयामों पर अवधारणाओं व सिद्धांतों में समवर्ती परिवर्तन आये हैं। राष्ट्रीय युद्ध, राष्ट्रीय-सशस्त्रीकरण, विचारधारात्मक युद्ध, आर्थिक युद्ध, सीमित युद्ध और समस्त व सामान्य युद्ध इन क्रमिक विकास से निकले हैं। बहुत पुरानी बात नहीं है जब युद्ध को सैनिक के अनन्य क्षेत्र के रूप में देखा जाता था। आज युद्ध को ऐसा बहु-विषयक प्रकार्य माना जाता है, जो राष्ट्रीय शक्ति के सभी तत्वों के अनुप्रयोग की मांग करता है। वास्तव में यह इतना गंभीर कार्य माना जाता है कि जिसे केवल सैनिक के लिये नहीं छोड़ा जा सकता।

पवित्र कुरआन में जंग (युद्ध) के जो आयाम दिये गये हैं, वो अल्लाह द्वारा मानव की रचना के उद्देश्य और उसकी अंतिम नियति के लिये मार्गदर्शन देने के लक्ष्यों को ध्यान में रखता है। उन आयामों के निर्धारण के लिये कुरआन में जंग की योजना व संचालन में संन्निहित 'वास्तविक' विषयों की पहचान करने तथा उन पर प्रकाश डालने के लिये गहरी बातें लिखी गयी हैं।

इन आयामों का प्रमुख सार इस तथ्य में मिलता है कि जंग का उद्देश्य अल्लाह का उद्देश्य है। इस आधार को लेकर आगे बढ़ते हुए कुरआन ने मुसलमानों को आदेश दिया है कि वे मजहबी कर्तव्य व दायित्व की भावना से जंग करें। कुरआन कहती है, "हे मोमिनो! तुम्हारे लिये जंग अनिवार्य कर दिया गया है। संभव है कि तुम्हें जंग अप्रिय हो। पर हो सकता है कि कुछ ऐसा हो जो तुम्हें अप्रिय हो, पर वही तुम्हारे लिए

श्रेष्ठ हो। इसी प्रकार सम्भव है कि कुछ तुम्हें प्रिय हो और वह तुम्हारे लिए बुरी हो। क्योंकि यह तो केवल अल्लाह जानता है, न कि तुम।"[1] इस कुरआनी आदेश ने सम्पूर्ण जंग की अवधारणा में और पक्ष व गहरायी दी। इस आदेश ने मुसलमान नागरिक को अल्लाह के आदेश को पूरा करने के लिये राज्य व अल्लाह दोनों के प्रति उत्तरदायी बनाया। जब कुरआन ने जंग को अनिवार्य बनाया तो इसने जंग को मोमिनों के लिये सद्गुण के रूप में देखा तो शेष मानवता के लिये भी लाभप्रद बताया। इस जंग का सबसे बड़ा सद्गुण इसके उद्देश्य व लक्ष्य में निहित है। जो जंग दमनचक्र समाप्त करने तथा न्याय व शांति की स्थितियों के निर्माण के लिये लड़ी जाए, वह उत्तम और पवित्र ही होती है।

कुरआन 'जंग के इन प्रधान आयामों' से स्थापित आधारों पर भव्य प्रासाद के निर्माण की ओर प्रवृत्त होती है। जो अल्लाह के मार्ग में लड़ते हैं उनके लिये कुरआन ने अल्लाह की बड़ी सहायता का वचन दिया। इसने कहा, ''हे मोमिनो! यदि तुम अल्लाह के मजहब की सहायता करोगे, तो अल्लाह तुम्हारी सहायता करेगा तथा तुम्हारे पांव जमा देगा।"[2] इसने मुसलमानों के मन में अल्लाह की सहायता आने और उसके प्रभाव को लेकर कोई संशय नहीं छोड़ा। कुरआन ने प्राधिकार (दावा) किया, "यदि अल्लाह तुम्हारी सहायता करे, तो तुम पर कोई प्रभुत्व नहीं पा सकता तथा यदि वह तुम्हारी सहायता न करे, तो फिर कौन है, जो उसके पश्चात तुम्हारी सहायता कर सके? अतः मोमिनों को अल्लाह ही पर विश्वास बनाये रखना चाहिए।"[3] वहीं दूसरी ओर कुरआन ने बल देकर कहा कि जो इस्लाम को छोड़ते हैं, उनकी सहायता व सहयोग के लिये कोई नहीं आयेगा। इसमें कहा गया, "यदि काफिर तुमसे युद्ध करते तो अवश्य ही पीठ दिखाते और उन्हें न कोई संरक्षक मिलता और न ही सहयोगी। अल्लाह ने उन पर ये पहले ही थोप दिया है और तुम अल्लाह के नियम में कदापि परिवर्तन नहीं पाओगे।''[4]

अल्लाह के इन वचनों के साथ कुछ पूर्व-प्रतिबंध व मानक भी जोड़े गये, जो मुसलमानों द्वारा अल्लाह की सहायता प्राप्त करने का पात्र होने के लिये आवश्यक थे। सर्व-सामर्थ्यवान अल्लाह ने कहा, ''हे मोमिनो! क्या मैं तुम्हें ऐसा उपाय बताऊं जो तुम्हें भयानक यातना से बचा ले? तो सुनों, तुम अल्लाह और उसके रसूल में विश्वास उत्पन्न करो, पूरे सामर्थ्य से; अपने तन और धन से अल्लाह के मार्ग में जिहाद करो। यदि तुम समझ सको तो यही तुम्हारे लिए उत्तम है!''[5] उस स्थिति में कुरआन ने उन्हें यह कहते हुए एक वचन दिया, ''वह तुम्हारे पापों को क्षमा कर देगा। तुम्हें ऐसी जन्नत में प्रवेश देगा जहां नीचे नदियां बहती हैं और उसके ऊपर बागीचा होता है, जहां स्थायी जन्नत के उद्यान में सुंदर महल हैं। वास्तव में यह उपलब्धि प्राप्त होना बड़ी सफलता है।''[6] इसी में आगे कहा गया, ''वह तुम पर ऐसी एक और कृपा करेगा जो तुम्हें प्रिय है। अल्लाह तुम्हारे लिये सहायता भेजेगा, जिससे कि शीघ्र विजय प्राप्त कर लो। तो यह शुभ सूचना मोमिनों तक पहुंचा दो।"[7]

इसके पश्चात पवित्र कुरआन उन लोगों के गुणों व लक्षणों को बताती है, जो अल्लाह की सहायता के पात्र हैं। मनुष्य का पूर्ण समर्पण अल्लाह की सहायता प्राप्त करने का मूल्य है। यह पुस्तक पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) को संबोधित करते हुए कहती है, ''आप कह दें कि निश्चय मेरी नमाज़, मेरा बलिदान तथा मेरा जीवन-मरण संसार के पालनहार अल्लाह के लिये है।''[8] इसकी व्याख्या करते हुए कुरआन कहती कि अल्लाह की कृपा उन पुरुषों के लिये है जिनमें अल्लाह के प्रति विश्वास व समर्पण है। ऐसे लोगों पर जब विपदा आती है तो अल्लाह उन पर कृपा करता है और बताती है, ''हम अल्लाह के हैं और हमें उसी के पास लौटकर जाना है।''[9] कुरआन कहती है कि ये वो लोग हैं, जिन पर अल्लाह की कृपा व दया बरसी है और वही हैं जिन्हें मार्गदर्शन प्राप्त होता है।[10] बाद के एक अवसर पर संसार बनाने वाले ने मोमिनों के साथ एक व्यापार करता है। यह सुंदर आयत कहती है, ''निःसंदेह अल्लाह ने मोमिनों के प्राणों तथा उनके धनों को मोल ले लिया है और इसके बदले

---

[1] बकरा: 216

[2] मोहम्मद: 7

[3] आले-इमरान: 160

[4] अल-फतह: 22-23

[5] साफ्फ: 10-11

[6] साफ्फ: 12

[7] साफ्फ: 13

[8] अनाम: 162

[9] बकरा: 156

[10] बकरा: 157

उन्हें जन्नत दी है। वे अल्लाह के मार्ग में जंग करते हैं, वे मारते और मरते हैं। ये तौरात, इंजील और कुरआन में अल्लाह पर सत्य वचन हैं। अल्लाह से बढ़कर अपना वचन पूरा करने वाला कौन हो सकता है? अतः, अपने इस सौदे पर प्रसन्न हो जाओ, जो तुमने अल्लाह के साथ किया और यह तुम्हारी बड़ी सफलता है।''[11]

यद्यपि कुरआन ने यह स्पष्ट कर दिया कि मोमिनों को अल्लाह की ओर से जिस सहयोग का वचन मिला है, वह न तो अधिकार का विषय है और न ही नित्य का नियम। उन्हें अल्लाह की यह सहायता पाने के लिये अल्लाह के मानकों व योग्यताओं को पूरा करना होगा। यदि वे ऐसा करने में विफल होते हैं तो न केवल वे अल्लाह की सहायता से वंचित हो जाएंगे, वरन् उन पर अल्लाह का कोप भी होगा। कुरआन ने कहा, ''हे अल्लाह में विश्वास करने वालों! तुम्हें क्या हो गया है कि जब तुमसे कहा जाए कि अल्लाह की राह में बाहर निकलो तो तुम धरती के बोझ बन जाते हो? क्या तुम आख़िरत (परलोक) की अपेक्षा सांसारिक जीवन से अधिक प्रसन्न हो गये हो? जबकि आख़िरत की अपेक्षा इस सांसारिक जीवन के लाभ बहुत थोड़े हैं। यदि तुम नहीं निकलोगे, तो तुम्हें अल्लाह दुःखदायी यातना देगा तथा तुम्हारे स्थान पर दूसरे लोगों को लायेगा। तुम उसका कुछ बिगाड़ नहीं पाओगे। क्योंकि अल्लाह जो चाहे कर सकता है।"[12] एक अन्य अवसर पर पुस्तक ने उन मोमिनों को चेतावनी दी जो अल्लाह के उद्देश्यों के लिये अपनी सेवाओं में पूर्ण समर्पण व त्याग नहीं दिखाते। कुरआन ने कहा," यदि तुम्हारे पिता, तुम्हारे पुत्र, तुम्हारे भाई, तुम्हारी पत्नियां, तुम्हारे परिवार, तुम्हारा धन जो तुमने कमाया है और वो व्यापार जिसके मंद हो जाने का तुम्हें भय है, वो घर जिनसे तुम मोह रखते हो वो सब तुम्हें अल्लाह, उसके रसूल और अल्लाह के उद्देश्यों के लिये जिहाद करने से अधिक प्रिय हैं तो प्रतीक्षा करो, अल्लाह तुम्हें इसका दंड देगा, क्योंकि अल्लाह उल्लंघनकारियों को मार्ग नहीं दिखाता।''[13] इसी विषय पर कुरआन ने कहा है, ''तुमने क्या समझ रखा है कि यूं ही बिना परीक्षा के जन्नत में प्रवेश कर जाओगे? वैसे अभी तुम्हारी वैसी दशा नहीं हुई, जो तुमसे पहले के मोमिनों की हुई थी? उन्हें कष्ट और आपदाओं ने घेर लिया था और वे इस सीमा तक झंझोड़ दिये गये थे कि रसूल और वो लोग जिन्होंने रसूल पर विश्वास किया था, वो सब के सब गुहार करने लगे कि अल्लाह की सहायता कब आयेगी?''[14]

इस प्रकार प्रतिद्वंद्वियों से जंग करते समय मोमिनों के लिये अल्लाह की सहायता के प्रश्न पर अल्लाह के निर्णय स्पष्ट व निर्विवाद हैं। वैसे तो अल्लाह ने लोगों के किसी समुदाय के लिये अपनी असीम कृपा आरक्षित रखी है। यदि मुसलमान यह मान लेता है कि वह चाहे पात्रता अर्जित करे या नहीं, अल्लाह की सहायता तो उसे मिलेगी ही तो वह भारी भूल कर रहा है। अल्लाह उन लोगों की दशा नहीं सुधारता जो पहले अपने हृदय और आत्मा के भीतर परिवर्तन न लायें। वह केवल उनकी सहायता करता है, जो स्वयं की सहायता करते हैं और वह यह सम्मान केवल उन्हें देता है, जो अंत:करण से इसके योग्य होते हैं। इस्लाम से पूर्व इजराइलियों ने यह भ्रम पाल लिया कि वे ईश्वर द्वारा चुने गये लोग हैं और वे दुख के भागी बने। परंतु उनकी संतानों ने इससे सीख लिया और अब वे उस भूल को नहीं दोहरा रहे हैं। अत: हममें इसको लेकर कोई संदेह नहीं रहना चाहिए कि जो हम अर्जित करेंगे और जिसके लिये हम आगे बढ़ेंगे उसी पर हमारा अधिकार होगा। हमने जितना उगाया है उससे अधिक उपज नहीं काट सकते। यदि हम अल्लाह के मानकों पर खरे नहीं उतरते हैं तो हम न केवल उसकी सहायता व सहयोग को खो देंगे, वरन् उसके कोप का भाजन भी बनेंगे। उहुद का उल्लेख करते हुए पवित्र कुरान कहती है, ''अल्लाह का उद्देश्य यह भी है कि जो अल्लाह व उसके रसूल में विश्वास लाये हैं उन्हें शुद्ध कर दे और जो अल्लाह और उसके रसूल को नकारते हैं उनका नाश कर दे। तुमने समझ क्या रखा है कि जब तक अल्लाह यह परीक्षा न ले ले कि तुममें से किसने अल्लाह के मार्ग में कठोरता से जंग किया और अटल रहा, तुम जन्नत में प्रवेश पा जाओगे।''[15]

जंग जीवन व संपत्ति दोनों के लिये खतरा उत्पन्न करती है। इसका परिणाम भूख, प्यास, थकावट, चोट, मृत्यु, विध्वंस व सर्वनाश होता है। पवित्र कुरआन ने जंग के इन भयानक पक्षों को माना और उनसे एक तार्किक व वैज्ञानिक ढंग से निपटा। इस संबंध में इस पुस्तक ने मानवजाति को जीवन और मृत्यु, पुरस्कार और दंड का विशिष्ट सिद्धांत दिया। पवित्र कुरआन ने कहा, 'तुम अल्लाह में विश्वास करने से कैसे मना

---

[11] तौबा: 111

[12] तौबा: 38-39 13

[13] तौबा: 24

[14] बकरा: 214

[15] आले-इमरान: 141-142

करते हो? पहले तुम निर्जीव थे और फिर अल्लाह ने तुम्हें जीवन दिया, फिर तुम्हें मृत्यु देगा, फिर तुम्हें (परलोक में) जीवन प्रदान करेगा, फिर तुम उसी की ओर लौट जाओगे!" [16] इन निर्देशों के अनुसार इस संसार में मृत्यु तो निस्संदेह अटल है, पर इसका अर्थ कदापि नहीं कि मृत्यु जीवन का अंत है।

इसके पश्चात एक दूसरा जीवन हमारी प्रतीक्षा कर रहा है और अंततः हमें अल्लाह के पास जाना है। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत कुरआन ने मोमिनों को अल्लाह के मार्ग में पूर्ण मनोयोग से जंग करने तथा मृत्यु के भय से जंग के मैदान से कभी न भागने का आह्वान किया। ''मैदान छोड़कर भागना तुम्हें कोई लाभ नहीं देगा। यदि तुम मृत्यु या हत्या किये जाने के भय से भाग रहे हो और भले ही तुम सुरक्षित बचकर निकल जाते हो, तो भी तुम्हारा यह अवकाश बहुत थोड़ा ही होगा और तुमको यह आनंद भोगने नहीं दिया जाएगा।''[17] इसमें यह भी आदेश दिया गया कि मृत्यु का समय नियत है और कोई भी इस समय को एक क्षण के लिये भी बढ़ा नहीं सकता। कुरआन ने कहा, ''हे मोमिनो! उन काफिरों के समान न बनो, जो जब यात्रा अथवा युद्ध में होते हैं तो अपने बंधुओं के विषय में कहते हैं 'यदि वे हमारे साथ रहे होते, तो वे न तो मरते और न मारे जाते।' जिससे कि अल्लाह उनके हृदय में इसे संताप और पश्चाताप बना दे। क्योंकि अल्लाह ही जीवन देता है और वो ही मृत्यु देता है तथा अल्लाह वो सब देख रहा है जो तुम कर रहे हो।"[18]

मृत्यु की अपरिहार्यता और मृत्योपरांत जीवन पर अल्लाह के निर्णय को बताने के बाद इस पुस्तक ने उन लोगों के लिये नियम बनाया जो अल्लाह के उद्देश्य से जंग करते हुए मर जाते हैं या मारे जाते हैं। इसमें कहा गया, ''यदि वे अल्लाह के मार्ग में मर गये या मारे गये तो अल्लाह की ओर से उनके सारे अपराधों पर क्षमादान और दया मिलेगी, वह उन सब से श्रेष्ठ है जो उन्होंने एकत्र किया है।"[19] पुस्तक में आगे लिखा गया, ''जो अल्लाह के मार्ग में मारे गये, तुम उन्हें मृत न समझो। नहीं, वे जीवित हैं और अल्लाह ने उन्हें अपनी दया से जो प्रदान किया है वे उससे प्रसन्न हैं। वे अल्लाह द्वारा प्रदान किये गये पुरस्कार पर हर्षित हो रहे हैं।"[20] एक अन्य अवसर पर भी कुरआन ने हमें बताया कि जंग के समय अल्लाह के मार्ग में मारे गये लोग वास्तव में जीवित हैं 'यद्यपि तुम उन्हें जीवित नहीं समझते।'[21] अल्लाह के उद्देश्य के लिये जंग में मर जाने अथवा मारे जाने को गौरवान्वित करने के लिये पवित्र कुरआन ने मोमिनों को आश्वस्त किया कि भले ही वे मर जाएं या मार डाले जाएं, यह अल्लाह के हाथ में है कि अंत में वे एक-साथ किये जाएं। तो जिन्होंने जंग पर अल्लाह के आदेशों का पालन किया है अल्लाह ने उनको किस पुरस्कार का वचन दिया है?

कुरआन ने आदेश दिया, "जो अल्लाह और उसके रसूल पर विश्वास लाये और जिन्होंने हिजरत किया तथा अल्लाह के मार्ग में जंग (जिहाद) किया (और आगे बढ़कर संघर्ष किया), वही अल्लाह की दया की आशा रखते हैं और अल्लाह अति क्षमाशील व बहुत दयालु है।''[22] इस संबंध में अल्लाह का नियम यह था कि 'उन पर तनिक भी अत्याचार नहीं किया जाएगा।'[23] इस विषय में अल्लाह के दृष्टिकोण का मुख्य तत्व यह है कि अच्छे कार्यों का पुरस्कार मिलेगा और बुरे कार्यों का दंड मिलेगा। सर्व-सामर्थ्यवान अल्लाह ने वचन दिया, ''अल्लाह मोमिनों के पुरस्कार को तनिक भी कम नहीं करता है।''[24] कुरआन ने कहा, ''उन्हें अल्लाह के मार्ग में लड़ने दो। जो आख़िरत (परलोक) के बदले सांसारिक जीवन की बिक्री कर चुके हैं और जो अल्लाह के उद्देश्यों के लिये जंग करेगा, चाहे वह मारा जाए अथवा विजयी हो उसे शीघ्र ही हम बड़ा प्रतिफल देंगे।''[25] पवित्र कुरआन ने यह भी वचन दिया, ''जिन्होंने अल्लाह के उद्देश्य से अपने घर छोड़े हैं और वे मर गये या मारे गये,

---

[16] बकरा: 28
[17] अहजाब: 16
[18] आले-इमरान: 156
[19] आले-इमरान: 157
[20] आले-इमरान: 169-170
[21] बकरा: 154
[22] बकरा: 211
[23] अन-निसा: 77
[24] आले-इमरान: 171
[25] अन-निसा: 74

उनके लिये अल्लाह उत्तम जीविका की व्यवस्था करेगा और वास्तव में अल्लाह ही सर्वोत्तम जीविका प्रदान करने वाला है।''[26] अल्लाह का पुरस्कार मोमिनों के प्रदर्शन के आधार पर भिन्न-भिन्न था। कुरआन ने कहा, ''मोमिनों में जो अकारण अपने घरों में रह जाते हैं और जो अल्लाह के मार्ग में अपने धन और तन से जिहाद नहीं करते हैं, दोनों बराबर नहीं हो सकते। जो घरों में बैठे रहते हैं उनकी अपेक्षा अल्लाह ने उन्हें पद में प्रधानता दी है, जो अपने तन और धन से जिहाद करते हैं।''[27] इसमें आगे कहा गया, ''जो भी अल्लाह और उसके रसूल पर विश्वास लाये हैं, उन सबको अल्लाह ने अच्छे का वचन दिया है। किंतु जो आगे बढ़कर जंग लड़ते हैं उन्हें अल्लाह ने विशेष पुरस्कार के द्वारा पद में उनसे ऊपर रखा है जो घरों में बैठे रहते हैं। अल्लाह की ओर से कई (उच्च) श्रेणियां तथा क्षमा और दया है। क्योंकि अल्लाह सदा क्षमाशील व अति दयालु है।"[28] वहीं दूसरी ओर जो अल्लाह के उद्देश्य के लिये आगे बढ़कर जंग करने में संकोच करते हैं, जो अपनी अकर्मण्यता में आनंदित होते हैं और जो जंग की खतरों से स्वयं को बचाना चाहते हैं उन्हें पुस्तक ने यह कहकर चेतावनी भी दी कि 'यदि वे समझें तो उन्हें बता दो कि नर्क के आग की गर्मी इससे भीषण है।'[29]

पवित्र कुरआन ने आदेश दिया, ''उन्हें थोड़ा कम हंसना चाहिए, क्योंकि वे जो कर रहे हैं उसके लिये उन्हें बहुत रोना है।"[30] पुस्तक ऐसे लोगों पर अपना निर्णय सुनाते हुए कहती है, ''यदि तब अल्लाह इन (दुविधावादियों) के किसी गुट के पास वापस लाये और वे (किसी दूसरे जंग में) जाने की अनुमति मांगें तो उनसे कहो कि तुम मेरे साथ कभी नहीं जा सकोगे और न ही मेरे साथ किसी शत्रु से जंग कर सकोगे। क्योंकि तुम पहले अवसर पर निठल्ले बैठे रहने पर प्रसन्न थे। तो अब उन्हीं के साथ बैठे रहो जो पीछे छूट गये। ऐसे लोगों में से कोई मर जाए तो उसके जनाज़े की नमाज़ कभी न पढ़ें और न उसकी कब्र पर खड़े हों। क्योंकि उन्होंने अल्लाह और उसके रसूल के साथ कुफ्र किया है और अवज्ञाकारी रहते हुए मरे हैं।''[31]

पुन: ध्यान दें कि जंग के कुरआनी आयामों का प्रधान तत्व इस तथ्य में है कि जंग अल्लाह के उद्देश्यों और न्याय व शांति की स्थितियां लाने के लिये लड़ी जाती है। वो जो इस महानतम अल्लाह के उद्देश्य के लिये जंग करते हैं, उनके लिये कुरआन ने अल्लाह की बड़ी सहायता का वचन दिया है। अल्लाह के उद्देश्य के लिये जंग का सूचक मनुष्य का अल्लाह की इच्छा के प्रति पूर्ण समर्पण है। जो अल्लाह की इच्छा के समक्ष पूर्णत: व समेकित समर्पण नहीं करते, उन पर अल्लाह के कोप का जोखिम बना रहता है। वैसे प्रकृति किसी समुदाय के लोगों के प्रति विशेष या एकांगी भाव नहीं रखती। वह केवल उनकी सहायता करती है जो स्वयं को इसका पात्र बनाते हैं और शेष को वह दंडित करती है। जंग लड़ने में प्राण और धन दोनों की हानि होने का जोखिम होता है, पर यह जोखिम इच्छापूर्वक व प्रसन्नता से स्वीकार किया जाना चाहिए। इस संसार में मृत्यु अटल है, पर जो अल्लाह के उद्देश्य के लिये जंग करते हैं उनके लिये इस संसार के बाद परलोक का जीवन और भव्य पुरस्कार भी निश्चित ही रखा हुआ है। हमारा पुरस्कार सीधे हमारे प्रदर्शन से आनुपातिक रूप से जुड़ा हुआ है। जो अल्लाह के उद्देश्य के लिये जंग (जिहाद) करते हुए मरते हैं, वास्तव में वे कभी नहीं मरते।

जो अल्लाह और उसके रसूल में विश्वास लाये हैं और उनके आदेशों को अपने व्यवहार में उतारे हैं, उनके लिये कुरआन के आयामों ने जंग को सच्चे अर्थों में क्रांतिकारी बनाया है। इन आयामों ने उनको ऐसा तेजस्वी व विराट व्यक्तित्व दिया कि वे स्वयं को जंग की प्रत्येक संभावना में वास्तव में श्रेष्ठ सिद्ध कर सकें। उन्होंने मानव मस्तिष्क द्वारा इतने लंबे व गहन क्रम के पश्चात ढूंढ़े गये मनोवैज्ञानिक व नैतिक आयामों को बौना कर दिया।

उन आयामों ने शत्रु के सभी संभावित मनोवैज्ञानिक व धार्मिक आक्रमणों के विरुद्ध मुसलमान फौज को समग्र व सम्पूर्ण सुरक्षा एवं प्रतिरोधक क्षमता दी। बदले में उन्होंने अपने घातक शत्रुओं पर प्रभावकारी मनोवैज्ञानिक व धार्मिक हमला करने के लिये दृढ़ व टिकाऊ मंच तैयार किया। उन्होंने उनको इतना समर्थ बनाया कि वे अपनी इच्छा और संकल्प से जंग की पीड़ा को सह सकें। ऐसे समर्पित व साहसी

---

[26] हज: 58

[27] अन-निसा: 95

[28] अन-निसा: 95-96

[29] तौबा: 81

[30] तौबा: 82

[31] तौबा: 83-84

व्यक्तियों का अनुसरण करते हुए जंग का ज्ञान व कौशल बढ़ा। समर्पण के साथ सीखकर और उसका प्रयोग कर उन्होंने शत्रु की 'खोखली' विशेषज्ञता की तुलना में स्वयं को अधिक श्रेष्ठ व प्रभावकारी सिद्ध किया। इससे उन्हें मृत्यु के भय से बाहर निकलने में सहायता मिली और वे अमर व अजेय हो गये।

बर्नार्ड ब्राडी कहते हैं, ''रणनीति पर लिखने वाले और उस रणनीति पर चलने वालों ने अपने सचेत प्रयोजन से सदा युद्ध के उन लक्षणों को अस्वीकार किया, जो साधारण लोगों में पूर्णतया स्पष्ट थे। रणनीति पर आलेख में कम ही बताया जाता है कि युद्ध-क्षेत्र में मृत्यु भी होती है। अस्त्र-शस्त्रों से गोलाबारी होती है, किंतु इन पर कोई कोलाहल या ऊधम नहीं किया जाता है। युद्धरत अथवा युद्धक अभियान पर जाते हुए सैनिक विजय का अनुभव करते हैं और कभी-कभी वे भयग्रस्त भी होते हैं, किंतु इस पीड़ा, उदासीनता, घबराहट, तंद्रा या अपार कष्ट का वर्णन कदाचित ही किया जाता है।""

कुरआनी के जंग का सिद्धांत उन प्रश्नों का उत्तर देता है जो मानव मस्तिष्क को उद्वेलित करते हैं। यह जंग के भौतिक व मनोवैज्ञानिक दबावों की पहचान करता है और इससे मुक्ति का प्रभावकारी उपाय भी देता है। हम तो इसे बहुत थोड़ा देते हैं, पर अपने सिद्धांतों में मजहब व विश्वास का तत्व देकर यह हमें उससे कई गुना अधिक वापस करता है।

अध्याय 6

युद्ध का नीति-सिद्धांत

जंग के कुरआनी सिद्धांत का प्रमुख पक्ष यह है कि यह अंतर-राज्यीय संबंधों में बल प्रयोग पर नियंत्रण व रोकथाम का सिद्धांत है। कुरआनी आदेश जिसमें मुसलमानों को मूर्तिपूजकों के विरुद्ध जंग में जाने का निर्देश दिया है, उसी में सीमा का उल्लंघन नहीं करने का भी निर्देश दिया गया है। इसमें कहा गया है, "अल्लाह के उद्देश्य के लिये जंग करो, पर सीमाएं न लांघों, क्योंकि अल्लाह उल्लंघन करने वालों को प्रेम नहीं करता।"[1] कुरआनी संदेश की आकाशवाणी में प्रत्येक स्तर पर अल्लाह का नियंत्रण डाला गया है। पहले 12 वर्षों तक मुसलमानों को उन अत्याचार को सहने को कहा गया, जो कुरैश उन पर कर रहे थे और साथ ही जंग से बचने को भी कहा गया। जंग लड़ने के लिये अल्लाह का आदेश निर्गत होने के साथ ही यह भी बताया गया कि किस विशिष्ट उद्देश्य के लिये जंग में जाया जाए। पवित्र कुरआन ने जंग के स्पष्ट और अचूक उद्देश्य को बताया। कुरआनी लक्ष्य और जंग के उद्देश्य की आधारभूत विषय-वस्तु शांति व न्याय का संरक्षण करना एवं बढ़ावा देना थी। इस उद्देश्य की प्राप्ति के आरंभिक स्तरों पर शत्रु को भी उदारवादी छूट दिये गये, जिससे कि जंग रुके और शांति का वातावरण बने। प्रचलित मापदंडों व परंपराओं में न्याय व विधि के कारणों को छोड़कर, किसी भी स्थिति में किसी का जीवन लेने की अनुमति नहीं थी। जिन्होंने इस निर्देश की अवहेलना की उन्हें उत्तरदायी ठहराया गया और दंडित किया गया। अंततः दया, करुणा और क्षमा का द्वार उन सभी के लिये खुला रखा गया जिन्होंने शुद्ध मन से प्रायश्चित किया।

सदियों पुरानी परंपरा के अनुसार अरब में तीन पवित्र मास जिल्काद, जिल्हज और मुहर्रम में युद्ध करना प्रतिबंधित था और पवित्र कुरआन ने इस परंपरा का पालन करने के निर्देश निर्गत किये। कुरआन में लिखा है, "पवित्र मास पवित्रता के लिये है और अब तक इस मास में जो भी कार्य निषिद्ध हैं, वो निषेध सब पर लागू होता है; तुम पर भी और शत्रु पर भी, क्योंकि यह समानता की विधि है। यदि तब भी कोई तुम्हारे विरुद्ध इस प्रतिबंध का उल्लंघन करता है या तुम उनके विरुद्ध इसका उल्लंघन करते हो तो अल्लाह से डरो और जान लो कि अल्लाह आज्ञाकारियों के साथ है।"[2] इसी प्रकार पुस्तक ने मुसलमानों को आदेश दिया कि पारस्परिक विनिमय के आधार पर पवित्र मस्जिद पर समझौता मानने की अरब परंपरा का सम्मान करो। इस विषय पर कुरआनी आदेश है, 'पर पवित्र मस्जिद में जंग न करो, जब तक कि वे वहां पर तुमसे न लड़ें।"[3] इन दोनों विषयों पर निस्संदेह मुसलमानों को समानता व पारस्परिक विनिमय की विधि का पालन करने की अनुमति दी गयी, इसके बाद भी उन्हें संयम रखने का परामर्श दिया गया। कुरआनी का यह आदेश कि 'अल्लाह उनके साथ है, जो स्वयं पर संयम रखते हैं', सहिष्णुता व धैर्य से जुड़े महत्व को बताता है।

यह पुस्तक केवल इतने प्रतिबंधों से संतुष्ट नहीं होती, अपितु इसने इस्लाम से पूर्व अरब में प्रचलित युद्ध की अमानवीय पद्धति पर पूर्ण प्रतिबंध लगाया। इस विषय पर पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) और आरंभिक खलीफाओं ने निर्देश दिये। मुस्लिम विधिवेत्ताओं ने जंग के समय मुसलमान फौज के लिये निषिद्ध कार्यों की पहचान के लिये अनेक अध्ययन किये हैं। डॉ. हमीदुल्लाह के अनुसार, शत्रु को मारने की क्रूर व पीड़ादायी विधियां प्रतिबंधित हैं। जो स्त्रियां, बच्चे अथवा नौकर व गुलाम जंग में अपने स्वामियों के साथ आये, किंतु वास्तविक जंग में भाग नहीं लिया, उनकी अनुमति नहीं है। मुसलमान फौज को अंधे, फकीर, एकांतवासी, वृद्ध, शारीरिक रूप से विकलांग, विक्षिप्त और मानसिक रूप से अक्षम लोगों को छोड़ देना चाहिए। जंग में बंदी बनाये गये लोगों का सिर काटने, शवों को क्षत-विक्षत करने अथवा शवों के साथ क्रूरता करने; कपट व विश्वासघात; उपजों का विध्वंस व विनाश करने, अति या दुष्टता करने और बंदी स्त्रियों के साथ यौनाचार व व्यभिचार करने की भी मनाही है।

---

[1] बकरा: 190

[2] बकरा: 194

[3] बकरा: 191

शत्रु दल में से बंदी बनाये गये लोगों की हत्या और शत्रु को नष्ट करने के लिये सामूहिक नरसंहार का आश्रय लेना भी प्रतिबंधित है। नितांत आत्मरक्षा की दशा को छोड़कर माता-पिता की हत्या करना और वास्तविक जंग में सम्मिलित न होने वाले किसानों, व्यापारियों, दुकानदारों, ठेकेदारों और इनके जैसे अन्य लोगों की हत्या की भी अनुमति नहीं है।

जंग के बंदियों के विषय में अल्लाह के स्पष्ट व निश्चित निर्देश निर्गत किये गये हैं। कुरआन कहती है, "अत: जब जंग में काफिरों से तुम्हारा सामना हो तो उनका गला रेत दो, जब तुम उन पर विजय पा लो तो उन्हें दृढ़ता से बांधो। फिर चाहो तो उदारता दिखाते हुए छोड़ो या फिर उनसे फिरौती लेकर, यह तुम्हारे ऊपर है।"[4] इस निर्देश के अनुसार जंग में मुसलमानों की पहली प्राथमिकता शत्रु को पराजित करना है, न कि उन्हें बंदी बनाना। दूसरी बात यह है कि बंदी तभी बनाये जा सकते हैं, जब कि शत्रु का पूर्णत: दमन हो जाए। तीसरा यदि उन्हें बंदी बनाया जाए तो उनके साथ मानवीयता का व्यवहार हो। यह व्यवहार उदारता दिखाते हुए की जाए या फिर फिरौती लेकर, ये दोनों विकल्प अवश्य हैं। हुनैन की जंग में मुसलमानों ने बड़ी संख्या में लोगों को बंदी बनाया था। उन सभी को फिरौती लेकर छोड़ दिया गया था। उनमें से कुछ जो अत्यंत निर्धन थे, उनकी फिरौती की राशि का भुगतान रसूल (उन पर शांति हो) द्वारा स्वयं किया गया था।

बहुत पहले सातवीं सदी में कुरआन में बताये गये जंग पर संयम व नियंत्रण इसके उस कथन का बल देते हैं कि जंग अपनी सम्पूर्ण नीति व रणनीति पर चलने के लिये सीमित व संयमित उद्देश्य को कहते हैं। वे यह भी सुनिश्चित करते हैं कि यदि जंग की होड़ प्रारंभ हो जाए, तो वह अनियंत्रित नहीं होनी चाहिए। जंग में संन्निहित मानवीय समस्याओं के विषय में कुरआन के निर्देश इतने श्रेष्ठ हैं कि उनकी तुलना में अन्य सिद्धांत कहीं नहीं ठहरते। वे आलोचकों द्वारा उस किये गये उस अविश्वसनीय व मलिन आलोचना के सामने विचारधारा के प्रहरी के रूप में कार्य करते हैं। अरब के निर्विवाद मजहबी व स्थायी शासक के रूप में मक्का में विजयोल्लास के साथ पुन: प्रवेश पर रसूल (उन पर शांति हो) द्वारा सार्वजनिक क्षमा की घोषणा जंग के संबंध में कुरआन की यह लाक्षणिकता संयम का चमकता उदाहरण है। जहां मानव इतिहास के पृष्ठ आज भी विश्व के महान विजेताओं द्वारा किये गये अत्याचार व रक्तपात से भरे पड़े हैं, वहीं जंग की कुरआनी अवधारणा अपनी मानवीय व नैतिक दोनों पक्षों में श्रेष्ठतम है।

आलोचकों द्वारा इस्लाम पर लगाया जाने वाला सामान्य आरोप है कि यह तलवार के बल पर फैला है। यह ऐसा आरोप है, जिसे इस्लाम के समर्थक मुखर होकर नकारते हैं। सत्य यह है कि बल के प्रयोग पर पवित्र कुरआन द्वारा थोपा गया संयम व नियंत्रण का उदाहरण और कहीं नहीं मिलता है। व्यवहार में कुछ ऐसी छिटपुट घटनाएं अवश्य दिख जाती हैं, जहां मुसलमान अपनी सीमाओं का उल्लंघन करते हुए पाये जाते हैं, किंतु पवित्र रसूल (उन पर शांति) ने ऐसे व्यवहार को अस्वीकार्य माना। यद्यपि यह माना जाना चाहिए कि जंग में संयम का पालन तात्विक रूप से द्वि-पक्षीय विषय होता है। ऐसा संभव नहीं है कि एक पक्ष संयम रखे और दूसरा पक्ष अति करता जाए। ऐसी स्थिति में एक समय वह भी आता है जब शांति व न्याय के संरक्षण व प्रोत्साहन का वह निर्देश सीमित बल के प्रयोग की मांग करता है। उन परिस्थितियों में बल का प्रयोग न करना अपराध होगा। इस्लाम इस प्रकार के उद्देश्य के लिये 'तलवार' के प्रयोग की अनुमति देता है। इसको लेकर आत्मग्लानि पालने की अपेक्षा मुसलमान को इस तथ्य से गौरव अनुभव करना चाहिए कि उसकी तलवार अत्याचार व दमन करने वालों को पराजित करने एवं मानवजाति के लिये शांति व न्याय लाने के लिये हैं। जैसे ही शांति व न्याय की स्थापना हो जाए, तलवार का प्रयोग उसी समय बंद कर देना चाहिए।

इस समस्या के प्रति अन्य समाजों व सभ्यताओं का क्या दृष्टिकोण रहा है? ईसाई धर्म से पूर्व समय के सैन्य इतिहास को खंगालने से युद्ध में संन्निहित मानवीय समस्याओं के विषय में अन्य राष्ट्रों व समुदायों के दृष्टिकोण का ज्ञान होता है। उस समय युद्ध जनजातियों, राष्ट्रों व देशों के मध्य लड़े जाते थे। उन युद्धों में विजेता प्राय: पराजित लोगों को युद्ध के विध्वंस का भाग मानता था। मध्य युग के आने तक युद्ध बंदियों व घायलों के साथ व्यवहार को लेकर कोई नैतिक संहिता अथवा सिद्धांत नहीं था।

नेपोलियन के युद्ध के बाद 18वीं सदी में यूरोप ने इस समस्या पर ध्यान देना प्रारंभ किया। प्रारंभ में कुछ राष्ट्रों ने एकाकी मानवीय व्यवहार अपनाया, परंतु इन उपायों का विधिकरण बाद में 1815-1914 की अवधि के बीच परंपराओं व संधियों के माध्यम से हुआ।

---

[4] मुहम्मद: 4

युद्ध के आधुनिक नीति-सिद्धांत जिनेवा सम्मेलन में गढ़े गये। स्विट्जरलैंड स्थित जिनेवा के निवासी जीन हेनरी दुनांत के प्रयासों से सर्वप्रथम 1864 में यह संधि हुई। आज जिनेवा संधि को व्यापक अंतर्राष्ट्रीय स्वीकृति है। इस संधि के तीन प्रमुख सिद्धांत मानवता, एकता व सार्वभौमिकता हैं। इसमें रोगियों, घायलों, नि:शस्त्र नागरिकों व अन्य मानवीय विषयों से संबंधित अधिकार प्रदान किये गये हैं। यद्यपि जिनेवा संधि के बाद भी, प्रथम विश्व युद्ध के समय साइप्रस की लड़ाई में मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध रासायनिक आक्रमण करने से जर्मनी को नहीं रोका जा सका। द्वितीय विश्वयुद्ध के अंतिम वर्षों में मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी पर अंधाधुंध बम गिराया जिसमें लाखों की संख्या में निर्दोष बच्चे व स्त्रियां मारी गयीं। मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी के असैनिक ठिकानों को भी नष्ट कर डाला। हिरोशिमा व नागासाकी पर नाभिकीय आक्रमण ने अमानवीय व निर्मम नरसंहार के सारे पिछले रिकार्ड को ध्वस्त कर दिया। कुछ वर्षों पूर्व भारत ने पाकिस्तान के युद्ध बंदियों को तीन वर्ष तक अपनी अधीनता में रखा था।

इस्लाम में जंग अल्लाह के उद्देश्य के लिये लड़ी जाती है। एक मुसलमान के जंग का उद्देश्य मजहबी, श्रेष्ठ, न्यायपरायणता व मानवीयता होती है। इस्लाम में विजय अल्लाह के उद्देश्य की विजय है। इस कारण एक श्रेष्ठ व मानवीयता से पूर्ण उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये अमानवीय व ओछे मार्ग अपनाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इस प्रकार जंग के इस्लामी दृष्टिकोण के मूल में मानवतावाद है।

अध्याय 7

युद्ध की रणनीति

कुरआन में दी गयी रणनीति की अवधारणा का अध्ययन करने से पूर्व इसके क्रमिक विकास का चयनात्मक विश्लेषण करना आवश्यक है, जिससे कि इस विषय पर मानव का चिंतन जिन अवस्थाओं से होकर निकला है, उनका ज्ञान हो सके। रणनीतिक विचार के क्रमिक विकास से संबंधित एक आलेख में हैरी एल. कोल्स ने मत दिया है कि रणनीति के इतिहास को दो समय-समूहों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम समयावधि 1945 के पूर्व का है, जब रणनीति में चिंतन का अभाव था। द्वितीय समयावधि का उदय 1945 के पश्चात हुआ और तबसे यह अति-चिंतन की व्याधि से ग्रस्त है। जब 1945 के पहले की समयावधि की समाप्ति हुई, तो रणनीतिक चिंतन का अन्वेषण यह था कि युद्ध के मनोवैज्ञानिक पक्षों को ध्यान में रखते हुए निर्णय लिये जाने चाहिए। 1945 के बाद की अवधि में नाभिकीय बम के अविष्कार के साथ ही रणनीति का सिद्धांत विभिन्न क्रमिक-विकास के स्तरों से होते हुए अंततः वहां पहुंची, जहां 'निवारण' का महत्व शीर्ष हो गया।

19वीं सदी के आरंभ में क्लाजविट्ज ने रणनीति को युद्ध के नियोजन की कला के रूप में चित्रित किया। यह ऐसी अवधारणा थी, जिसे मॉके, श्लाईफेन, फॉश और लुडनड्रॉफ ने धर्म समझकर स्वीकार किया। उनके शोध-प्रबंध का मुख्य सार यह था कि निर्णायक युद्ध लड़ने के मुख्य विचार को प्रधानता देते हुए अन्य दूसरे तर्कों को उसके नीचे रखना चाहिए। एक शताब्दी बाद लिडल हर्ट दो बिंदुओं पर क्लाजविट्ज की आलोचना में मुखर हुए। उनकी प्रथम आपत्ति यह थी कि क्लाजविट्ज की रणनीति ने नीति के क्षेत्र का अतिक्रमण किया है। विवाद का दूसरा आधार यह था कि इसमें रणनीति के साधनों को युद्ध के शुद्ध व अनन्य उपयोग तक सीमित रखा गया है।

'क्लाजविट्जवादी संवृद्धि के रक्त-वर्णी मदांध' के विरोध में लिडल हर्ट ने 'रक्तहीन विजय' का विचार प्रतिपादित किया और इसे 'दोषहीन रणनीति' की संज्ञा दी। दोषहीन रणनीति के उदाहरण के रूप में उन्होंने सीजर के इलेरडा अभियान, क्रोमवेल के प्रिस्टन अभियान, नेपोलियन के उल्म अभियान, 1870 में सिडैन में मॉके, 1918 में ऐलेन्बी के समारिया अभियान और 1940 में फ्रांस पर जर्मनी की विजय को प्रस्तुत किया। लिडल हर्ट के शब्दों में, नीति के फल को प्राप्त करने के लिये 'सैन्य साधनों के वितरण व अनुप्रयोग की कला' ही रणनीति है। उन्होंने तर्क दिया कि रणनीति का लक्ष्य सामरिक महत्व की स्थितियों को इतना उपयोगी बनाना होता है कि 'यह अपने विषय में स्वयं ही परिणाम का निर्णय न करे, वैसे भी युद्ध में इसकी निरंतरता से ही परिणाम मिल जाना सुनिश्चित होता है। इस प्रकार लिडन हर्ट की रणनीति का प्रधान लक्ष्य शत्रु को मनोवैज्ञानिक रूप से अस्त-व्यस्त करना है, जो प्रत्यक्ष परिणाम की उत्पत्ति पर दिष्ट हो। उन्होंने कहा, ''यदि यह संभव न हो, तो इससे पूर्व युद्ध में भौतिक या सुप्रचालनिक अव्यवस्था लायी जानी चाहिए, जिससे कि लड़ाई को न्यूनतम अनुपात में लाया जा सके।''

इससे वह विस्थापन आयेगा, जो लिडल हर्ट की रणनीति की मुख्य विषय-वस्तु है और ऐसा या तो भौतिक अथवा सुप्रचालनिक क्षेत्र में किया जा सकता है या फिर मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में। अपने इस शोध-प्रबंध में आगे बढ़ते हुए लिडल हर्ट हमें बताते हैं कि शत्रु की व्यूह-रचना को विफल करके, उसकी सेना के वितरण व संगठन को अस्त-व्यस्त करके, उसकी पिछली पंक्ति को खतरे में डालकर तथा उसकी संचार व्यवस्था को भंग करके भौतिक क्षेत्र में अस्त-व्यस्त किया जा सकता है। शत्रु पर पड़े इस प्रभाव का प्राकृतिक परिणाम मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में दिखेगा।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी रणनीतिकार बोफ्र लिडल हर्ट द्वारा दिये गये शत्रु के मनोवैज्ञानिक अस्त-व्यस्तता के सिद्धांत से सहमत तो हैं, पर वे उनकी परिभाषा से असहमत हैं। बोफ्र के विचार से लिडन हर्ट की परिभाषा 'क्लाजविट्ज की परिभाषा' से बहुत भिन्न नहीं है। बोफ्र रणनीति को सैन्य बलों की ऐसी 'अमूर्त पारस्परिक क्रिया' के रूप में देखते हैं, जो दो विरोधी इच्छाओं के बीच संघर्ष से निकलता है।' उनका दृढ़ कथन है, ''जब शत्रु पर एक निश्चित मनोवैज्ञानिक प्रभाव डाला जाता है, तो उसका परिणाम निकलता है।''

विरोधी इच्छाओं के तर्कशास्त्र का मागदर्शी सिद्धांत यह था कि एक ऐसी स्थिति का निर्माण किया जाए और उसका लाभ उठाया जाए, जो शत्रु के मनोबल को पर्याप्त रूप से तोड़कर उसे उस दशा को स्वीकार करने को बाध्य कर दे, जो कि उस पर थोपे जाने के लिये वांछनीय था।' क्रांतिकारी लेनिन ने पहले ही मनोबल संबंधी कारकों पर ऐसा ही बल दिया था, यद्यपि इसका प्रसंग दूसरा था। उन्होंने यह नियम बनाया

था कि युद्ध में सबसे ठोस रणनीति यह होती है कि जब तक शत्रु का मनोबल इतना न टूट जाए कि उस पर घातक प्रहार किया जाना सरल व संभव हो जाए, तब तक युद्ध को स्थगित रखे रहना चाहिए।

एडमिरल इक्लीज का मानना था कि रणनीति की सही समझ आवश्यक है, क्योंकि यह सैन्य समस्याओं के केंद्र में होती है। रणनीति के साहित्य में उपलब्ध विचारों व साहित्यों की विविधता की अपेक्षा उन्होंने अनुकूलता व एकजुटता की अवधारणा प्राप्त करने के लिये धर्मयुद्ध छेड़ा था। उन्हें लिडल हर्ट (जिसका अध्ययन हमने पहले ही किया है) और हरबर्ट रॉजिंकी के विचारों में यह तादात्म्य मिला। रॉजिंकी ने रणनीति को 'शक्ति की व्यापक दिशा' कहा और बताया कि रणनीति का अनुप्रयोग केवल दिशा नहीं है, वरन् वह संभावित प्रति-कार्रवाई को भी ध्यान में रखता है। इस प्रकार यह नियंत्रण का एक साधन बन गया, जो कि रॉजिंकी के विचार में इसका वास्तविक तत्व था। रॉजिंकी की परिभाषा को लेकर इक्लीज ने स्वयं एक परिशिष्ट प्रस्तुत किया। उन्होंने नियम दिया, ''रणनीति ध्येय की प्राप्ति के लिये स्थितियों व क्षेत्रों को नियंत्रित करने में शक्ति की व्यापक दिशा होती है।'' यह एक विशेष प्रभाव के लिये तात्विक रूप से नियंत्रण से संबंधित था। नियंत्रण की प्रकृति की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि रणनीति नियंत्रण की योजना अथवा पद्धति, नियंत्रण का उद्देश्य, प्रकृति व परिमाण तथा क्या नियंत्रण करना है, इससे संबंधित होती है। बोफ्र जैसा ही इक्लीज ने भी पहचाना कि उन साधनों में से केवल एक शक्ति ही ऐसी थी, जिससे नियंत्रण स्थापित किया जा सकता था।

नाभिकीय शस्त्रों के अविष्कार के साथ 1945 और 1955 के मध्य ऐसे रणनीतिकार उभरे, जिन्होंने नाभिकीय बम को युद्ध के 'परम' अस्त्र के रूप में देखा। तद्नुसार, उन्होंने आतंक के संतुलन की रणनीति के सिद्धांत को बनाया। जे. रॉबर्ट ओपेनहाइमर ने इस सिद्धांत की सर्वश्रेष्ठ व्याख्या 'एक बोतल में दो बिच्छू' की सादृश्यता का रूपक देकर की है। परमाणु बम के उत्तरोत्तर विकास और इसके प्रभावों के और अधिक ज्ञान से 1954 में ड्यूलास का भारी नाभिकीय प्रति-कार्रवाई का सिद्धांत आया और मैकमेरा की लचीली प्रतिक्रिया आयी।

क्रमिक निवारण, द्वितीय प्रहार क्षमता तथा सामुद्रिक प्रणाली के आसपास मंडरा रही अन्य विचारधाराओं ने भी इसका अनुसरण किया।

1959 में अल्बर्ट वॉहस्टेटर ने 'आतंक के संतुलन' के सिद्धांत की भर्त्सना की। उनका शोध प्रबंध यह था कि एक निवारक बल का अस्तित्व तभी रह सकता है जब उसके पास प्रति-कार्रवाई की क्षमता हो। उन्होंने द्वितीय प्रहार क्षमता के लिये छह उपबंधों के समूह का प्रतिपादन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि उस समय अमरीका के पास इनमें से कुछ भी नहीं था। डॉ. हेनरी किसिंजर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'नेसेसिटी फॉर चॉइस' में मर्यादित युद्धों का नया सिद्धांत दिया और 'निवारण' के लिये 'विश्वसनीयता' का तत्व प्रस्तुत किया। उन्होंने लिखा, ''निवारण'' के लिये शक्ति, शक्ति के प्रयोग की इच्छा और संभावित आक्रमणकारी द्वारा इनके आंकलन के संयोजन की आवश्यकता होती है।'' 1960 से निवारण किसी न किसी रूप में रणनीति के क्षेत्र में प्रमुख पक्ष रहा है। यह विभिन्न प्रकार से सक्रिय व निष्क्रिय, आक्रामक व रक्षात्मक, सापेक्ष व सम्पूर्ण अथवा परम, सकारात्मक व नकारात्मक, सीमित और व्यापक, प्रति-बल और प्रति-शासन आदि के रूप में वर्णित किया गया है।

आइये, अब रणनीति पर कुरआन की अवधारणा के अध्ययन का प्रयास करें। इस अध्ययन का प्रथम चरण सम्पूर्ण रणनीति अर्थात जिहाद और फौजी रणनीति में भेद समझना है। जिहाद शब्द को प्राय: फौजी रणनीति के रूप में समझ लिया जाता है, जबकि वास्तव में यह सम्पूर्ण अथवा महा-रणनीति अथवा कार्यकारी-नीति है। जिहाद व्यापक दिशानिर्देश और 'सत्ता' संचालन के संबंध में होता है। जिहाद एक निरंतर व सतत् संघर्ष है, जो नीति का ध्येय प्राप्त करने के लिये राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, घरेलू, नैतिक और मजहबी सभी पक्षों में किया जाता है। इसका लक्ष्य इस्लामी राज्य को दिये गये सभी मिशनों को प्राप्त करना है और फौजी रणनीति ऐसा करने के लिये उपलब्ध साधनों में से एक है। यह व्यक्तिगत और सामूहिक तथा आंतरिक व वाह्य स्तरों पर भी किया जाता है।

इसकी मूल भावना और इसके लिये उपलब्ध अनेक साधनों के साथ किये गये जिहाद अर्थात सम्पूर्ण रणनीति की इस्लामी अवधारणा में सीधा परिणाम देने की क्षमता होती है।

यद्यपि वैकल्पिक रूप से यह तीव्र गति और आर्थिक रूप से अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये फौजी रणनीति के अनुकूल स्थितियों का निर्माण करता है। इस प्रकार फौजी रणनीति अपने सफलतापूर्वक संचालन के लिये सम्पूर्ण रणनीति (जिहाद) से तैयार होती है। सम्पूर्ण रणनीति के निर्माण, दिशा व अनुप्रयोग में किसी भी प्रकार का दोष या गुण उसी ढंग से फौजी रणनीति को प्रभावित कर सकता है। जिहाद के अभाव में 'बल' की तैयारी और उसके अनुप्रयोग का पूरा लाभ मिल पाये, ऐसा होना कठिन होगा। या यूं कहें कि फौजी उपकरणों की यथेष्ठ तैयारी और अनुप्रयोग जिहाद का अभिन्न अंग निर्मित करता है।

तब फौजी रणनीति पर कुरआन की अवधारणा क्या है? फौजी रणनीति पर अल्लाह के सिद्धांत से संबंधित निर्देश बद्र, उहुद, खंदक, तबूक और हुदैबिया की जंगों के संबंध में दी गयी आयतों में मिलते हैं। बद्र की स्थिति का ध्यान करते हुए पवित्र कुरआन ने इस्लाम के रसूल (उन पर शांति हो) को स्मरण कराया, ''स्मरण रख, तूने अपने अल्लाह की सहायता के लिये पुकार लगायी और उसने तेरी पुकार सुनी। 'मैं निरंतर एक हजार फरिश्ते भेजकर तेरी सहायता करूंगा। अल्लाह ने ये इसलिए बता दिया, जिससे कि तुझमें आशा का संचार हो और तेरे मन में निश्चिंतता आये। अन्यथा सहायता तो अल्लाह ही की ओर से होती है। वास्तव में अल्लाह प्रभुत्वशाली तत्वज्ञ है।''[1] कुरआन में आगे कहा गया, ''उस समय का स्मरण करो, जब अल्लाह ने ऐसा किया कि तुम ऊंघने लगो, जिससे कि तुम सुरक्षित और शांत हो सको, तुम्हारी मनोदशा सुधर जाए और उसके बाद तुम्हारे पांव सुदृढ़ता से जम जाएं।''[2]

उहुद के विषय में कुरआन ने कहा, ''स्मरण करो, जब तुम मोमिनों से कह रहे थे: क्या तुम्हारे लिए ये बस नहीं है कि अल्लाह तीन हज़ार फ़रिश्तों को (आकाश से) उतार कर तुम्हारी सहायता करे? क्यों नहीं? यदि तुम दृढ़ रहोगे, ठीक से लक्ष्य पर लगे रहोगे, तो यदि शत्रु तुम्हारी ओर विद्युत गति से भी आये तो कोई बात नहीं। तुम्हारा अल्लाह (तीन नहीं) पांच हज़ार फरिश्ते तुम्हारे पास भेजेगा, जो शत्रु पर भयानक हमला करेंगे। अल्लाह ने ये इसलिए बता दिया, जिससे कि तुममें आशा का संचार हो और तुम्हारे मन निश्चिंत हो जाए। अन्यथा सहायता तो अल्लाह ही की ओर से होती है। वास्तव में अल्लाह प्रभुत्वशाली तत्वज्ञ है।''[3].

इस जंग में एक समय ऐसा भी आया कि मुसलमान फौज मुंह की खाने लगी। कुरआन के शब्दों में उसी समय सर्व-सामर्थ्यवान अल्लाह ने 'तुम्हें यह समझाने के लिये बदले में एक के बाद एक विपदा दी कि तुम लूट के उस माल के लिये दुखी न हो, जो तुमसे छूट गया और उस विपदा के लिये उदास न हो, जो तुम पर आ पड़ी है।'[4] कुरआन में कहा गया, ''फिर विपदा के पश्चात तुम्हारे मन को शांत किया, जिससे तुम्हारे एक पक्ष का चित्त स्थिर हो गया, पर दूसरे एक पक्ष को अपनी पड़ी हुई थी। वे अल्लाह के बारे में असत्य (जाहिलिया) सोच रहे थे।"[5]

हुनैन की जंग में पुन: मुसलमानों को प्रारंभ में पराजय मिली और लगभग उहुद जैसी स्थिति का सामना करना पड़ा, यद्यपि वे शीघ्र ही उठ खड़े हुए और अंत में उन्हें बड़ी विजय मिली। उस अवसर की बात करते हुए पवित्र कुरआन कहती है, ''अल्लाह बहुत-से स्थानों पर तथा हुनैन के दिन तुम्हारी सहायता की। पर ध्यान रखना! तुम्हें अपनी संख्या पर अहंकार हो गया था, पर वह संख्या किसी काम न आयी। तुम्हारे लिये इतनी बड़ी धरती छोटी पड़ गयी थी और तुम पीठ दिखाकर भागे थे। फिर अल्लाह ने अपने रसूल और मोमिनों पर का चित्त शांत किया तथा ऐसी फौज उतारी जिन्हें तुमने नहीं देखा और काफ़िरों को यातना दी। काफिरों का यही दंड-फल है।"[6] हुदैबिया की एक स्थिति की ओर संकेत करते हुए पुस्तक में लिखा है, ''वही है जिसने मोमिनों के मन को शांत किया, जिससे कि अल्लाह व उसके रसूल में उनका विश्वास और

---

[1] अन्फाल: 9-10

[2] अन्फाल: 11

[3] आले-इमरान: 124-126

[4] आले-इमरान: 153

[5] आले-इमरान: 154

[6] तौबा: 25-26

अधिक हो जाए।''[7] हुदैबिया में अत्यंत कठिन परिस्थितियों में मुसलमानों द्वारा ली गयी निष्ठा की शपथ के विषय में पवित्र कुरआन बताती है, ''उसे ज्ञात था कि मोमिनों के मन में क्या चल रहा है और इसी कारण उसने उन पर शांति उतार दी और उन्हें शीघ्र विजय का पुरस्कार दिया।''[8]

उपरोक्त संदर्भित स्थितियों में हम पाते हैं कि जब भी अल्लाह अपने शत्रुओं के षडयंत्र को विफल व नष्ट करना चाहता है, तो वह मोमिनों के हृदय को सुदृढ़ करके तथा अपनी ओर से मोमिनों पर शांति उतार कर ऐसा करता है।

अत: हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि शत्रु को अपनी इच्छा व निर्णय थोपने से रोकने के लिये आवश्यक है कि हम अपनी फौज में स्थिरता, आशा, विश्वास और शांत चित्तता बनाये रखें। किंतु शत्रु पर हमारी इच्छा व निर्णय थोपने के लिये क्या किया जाना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये आइये, पुस्तक को पुन: खंगालें।

बद्र के विषय में बात करते हुए पवित्र कुरआन ने इस्लाम के रसूल (उन पर शांति हो) को संबोधित करते हुए कहा, ''(हे नबी!) यह वो समय था, जब तुम्हारा अल्लाह फरिश्तों को संकेत कर रहा था कि मैं तुम्हारे साथ हूं।''[9] पुन: उहुद की जंग में इस पुस्तक ने मुसलमानों की पराजय के कारण को चिन्हित किया और उन्हें भविष्य की कार्ययोजना को लेकर का मार्गदर्शन दिया। मुसलमानों को अल्लाह द्वारा निर्धारित आचारसंहिता माननी चाहिए और इसके लिये अल्लाह ने उन्हें यह वचन दिया, ''शीघ्र ही हम काफिरों के मन में तुम्हारा भय डाल देंगे।'' शत्रु के मन में भय उत्पन्न करने के प्रश्न पर खंदक की जंग से संबंधित एक संदर्भ सूरा 'अहजाब' में भी है।[10] पवित्र कुरआन ने बनू कुरैजा के द्रोह का उल्लेख करते हुए कहा, ''इस पुस्तक को मानने वाले जिन लोगों ने उनकी सहायता की है, अल्लाह ने उन्हें उनके गढ़ियों से उतार दिया है और उनके मन में भय उत्पन्न कर दिया है और तुम अब उनमें से कुछ की हत्या कर पा रहे हो और कुछ को बंदी बना पा रहे हो। अल्लाह ने उनकी भूमि, घर और उनकी वस्तुओं का उत्तराधिकारी तुम्हें बना दिया है और उनकी ऐसी धरती तुम्हें दे दी है जिस पर तुमने पहले कभी पग नहीं रखे थे। अल्लाह जो चाहे, कर सकता है।"[11]

हम देखते हैं कि इन सभी अवसरों पर जब अल्लाह ने अपनी इच्छा शत्रु पर थोपनी चाही तो उसने ऐसा करने के लिये उनके मन में भय उत्पन्न करने का विकल्प चुना। किंतु उसने मोमिनों के लिये क्या रणनीति निर्धारित की है, जिससे कि वे अपने शत्रु से अपना निर्णय मनवा सकें?''

''जो काफ़िर हो गये, वे कदापि ये न समझें कि हमसे आगे हो जाएंगे। निश्चय वे (हमें) विवश नहीं कर सकेंगे। तुमसे जितनी हो सके, उनके लिए बल तथा सीमा रक्षा के लिए घोड़े तैयार रखो, जिससे कि अल्लाह के शत्रुओं तथा अपने शत्रुओं को और इनके अतिरिक्त उन अन्य लोगों को भी भयभीत करो, जिन्हें तुम नहीं जानते पर अल्लाह जानता है।''[12]

इस प्रकार कुरआनी फौजी रणनीति आदेश देती है कि हम प्रत्यक्ष या परोक्ष शत्रु दलों में भय उत्पन्न करने के लिये स्वयं को अधिकतम सीमा तक तैयार करेंगे, जिससे कि शत्रु द्वारा आतंकित किये जाने पर अपनी रक्षा की जा सके। इस रणनीति में आतंक के विरुद्ध अपनी रक्षा 'आधार' है और जंग की अधिकतम तैयारी 'उद्देश्य' है तथा शत्रुओं के मन में भय उत्पन्न करना 'प्रभाव' है। यह पूरा सिद्धांत मानव चित्त, उसकी आत्मा, भावना और विश्वास के चारों ओर घूमता है। जंग में हमारा मुख्य लक्ष्य शत्रु का मन-मस्तिष्क अथवा आत्मा होती है, इस लक्ष्य पर आक्रमण के लिये हमारा मुख्य हथियार हमारा अपना आत्मबल होता है और इस प्रकार के आक्रमण को करने के लिये हमें अपने मन से भय को दूर रखना होता है।

---

[7] फतह: 4

[8] फतह: 18

[9] अन्फाल: 12

[10] आले-इमरान: 151

[11] अहजाब: 26-27

[12] अन्फाल: 59-60

तैयारी के चरण से ही कुरआन की रणनीति प्रभाव में आ जाती है और इसका उद्देश्य शत्रु पर प्रत्यक्ष निर्णय थोपना होता है। अन्य बातें वही रहती हैं, पर जंग के लिये तैयारी जंग के समय हमारे प्रदर्शन का सच्चा सूचक होता है। हमें युद्ध-क्षेत्र में शत्रु का सामना करने से पूर्व अपने उद्देश्य व इच्छा की हितकारी प्रतिष्ठा एवं इसकी प्राप्ति के लिये दृढ़ निश्चय करने पर लक्षित रहना चाहिए। जंग के लिये हमारी तैयारी इतनी ऊर्जावान, उत्साहपूर्ण, समग्र व पूर्ण होनी चाहिए कि हम 'ताकत की जंग' लड़ने से पूर्व ही 'इच्छा की जंग' जीत लें। तैयारी के स्तर पर ही शत्रु के मन में भय उत्पन्न करने के लक्ष्य वाली रणनीति ही सीधा परिणाम दे सकती है और लिडेल हार्ट के स्वप्न को वास्तविकता में साकार कर सकती है।

शांति काल के समय हमारी 'इच्छा' का प्रकटीकरण 'तैयारी' के माध्यम से होना चाहिए। शांति काल में प्रारंभ की गयी जंग की तैयारी सक्रिय जंग से अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है। रणनीति का बड़ा भाग तुलनात्मक रूप से परिचालन क्षेत्र या भूमि के बनिस्बत, अभ्यास चक्र, प्रशिक्षण अभ्यास के समय आदर्श मंथन और परिचलात्मक सम्मिलन में अधिक होती है।

शांति काल में हम जो कुछ भी करते हैं या जिसमें विफल होते हैं, वह हमारे संभावित शत्रुओं पर अनुकूल या प्रतिकूल जो भी हो, पर यह सुनिश्चित प्रभाव डाल रहा होता है। यथोचित रूप से करण व अकरण का छोटा और सामान्य कृत्य भी बड़ा महत्व ग्रहण करने के लिये एक-दूसरे से मिल जाते हैं। हमें इस तथ्य का सदा ध्यान रखना चाहिए कि हमारी रणनीति शांति काल में हमारे कार्यों द्वारा पूरे प्रवाह में चलती रहे और जैसा भी हो हमें यह ध्यान रखना चाहिए हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये योगदान दे रहे हैं अथवा इसको क्षति पहुंचा रहे हैं।

गुणवत्ता और परिमाण दोनों में तैयारी अधिकतम होनी चाहिए। यह सतत् व निरंतर चलने वाली प्रक्रिया होनी चाहिए। तैयारी केवल फौजी हथियारों से ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण रणनीति अर्थात जिहाद के अंतर्गत होनी चाहिए। फौजी तैयारी वांछित परिणाम तभी देंगे, जब यह पूर्ण तैयारी का एक भाग हो। परिमाणात्मक तैयारी की अपनी सीमाएं हो सकती हैं, किंतु गुणवत्तापरक तैयारी वांछित प्राप्त करने की हमारी इच्छा और ऊर्जा पर निर्भर होती है। भौतिक संसाधन जितने कम हों, उतना ही जंग के मजहबी आयामों पर अधिक बल व निर्भरता बढ़ा दी जानी चाहिए। जंग करने वाली फौज की परिचालात्मक प्रभावकारिता इसके सम्पूर्ण ताकत पर निर्भर करती है और यह ताकत भौतिक के साथ ही मजहबी भी होती है। हो सकता है कि कोई फौज किसी एक क्षेत्र में निम्नतर हो, पर उसे समग्रता में अपने शत्रु पर श्रेष्ठतर होना चाहिए। वह पक्ष जो भौतिक ताकत में कम है, उसे कुल ताकत का उच्च अंश अर्जित करने के लिये अपने मजहबी ताकत का आश्रय लेना चाहिए। यद्यपि भौतिक ताकत 'अधिकतम सीमा' तक तैयार की जानी चाहिए और इसका अधिकतम अनुप्रयोग भी होना चाहिए। भौतिक तैयारी मजहबी तैयारी की पूरक है और मजहबी तैयारी भौतिक तैयारी की। इनमें से कोई एक दूसरे का न तो विकल्प बन सकती है और एक-दूसरे को प्रभाव को कम कर सकती है।

शत्रुओं के मन में भय उत्पन्न करना केवल एक साधन नहीं है। यह अपने आप में एक प्रकार से परिणाम है। एक बार शत्रु के हृदय में आतंक की स्थिति उत्पन्न कर कर दी जाए, तो कदाचित ही कुछ प्राप्त करने को शेष रह जाता है। यह वो बिंदु है, जहां साधन और परिणाम मिलते हैं और एक-दूसरे में समाहित हो जाते हैं। आतंक केवल शत्रु पर निर्णय थोपने के साधन भर नहीं हैं, यह वो निर्णय है जो हम उस पर थोपना चाहते हैं।

मनोवैज्ञानिक व भौतिक रूप से अस्त-व्यस्त करना अपने आप में सर्वोत्तम साधन हैं और इस ढंग से बिना किसी साधन के शत्रुओं के हृदय में आतंक भरने का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। इसका प्रभाव शत्रु की भौतिक व मजहबी सामर्थ्य से संबंधित होती है, यद्यपि यह कदाचित ही स्थायी व निरंतर प्रकृति होती है। जो फौज जंग पर कुरआन के सिद्धांत को उसकी सम्पूर्णता में अपनाती है, उस पर मनोवैज्ञानिक दबावों का प्रभाव नहीं पड़ता है। जब लिडल हर्ट शत्रु पर केवल मनोवैज्ञानिक अस्त-व्यस्तता उत्पन्न कर सीधा निर्णय थोपने की बात करते हैं, तो वह शेष अन्य तथ्यों को कुछ अधिक ही तुच्छ समझने लगते हैं। संचार माध्यमों को काट देने अथवा वापसी के मार्ग को अवरुद्ध कर देने भर से ही किसी फौज में आतंक नहीं उत्पन्न किया जा सकता है। यह मूलत: मानव के आत्मबल या दुर्बलता से संबंधित होता है। यह शत्रु के विश्वास को नष्ट कर देने भर से नहीं हो सकता। मनोवैज्ञानिक अस्त-व्यस्तता अस्थायी होती है, जबकि धार्मिक विचलन स्थायी होता है। मनोवैज्ञानिक विचलन भौतिक कृत्य से उत्पन्न तो किया जा सकता है, किंतु इससे धार्मिक विचलन पर अच्छी पकड़ नहीं बनेगी। शत्रु के मन में भय उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि अंतिम विश्लेषण में उसके धार्मिक विश्वास को विचलित किया जाए। अजेय धार्मिक विश्वास पर आतंक का प्रभाव नहीं पड़ता। धर्म पर अस्थिर विश्वास आतंक को स्थान देता है। पवित्र कुरआन द्वारा हमको प्रदान किये गये धार्मिक विश्वास में हमारे भीतर

से भय को निकाल फेंकने और शत्रु के मन में भय उत्पन्न करने की ताकत निहित है। शत्रु के विरुद्ध रणनीति का जो भी रूप अथवा प्रकार अपनाया जाए, उसके प्रभाव के लिये आवश्यक है कि उसमें शत्रु के मन में भय उत्पन्न करने की क्षमता हो। जो रणनीति यह स्थिति प्राप्त करने में विफल रहती है, वह अपनी अंतर्निहित त्रुटियों व दुर्बलताओं से भुगतती है और ऐसी रणनीति की समीक्षा करके उसमें सुधार किया जाना चाहिए। यह नियम नाभिकीय और पारंपरिक दोनों प्रकार के जंग पर पूर्णत: क्रियान्वित होना चाहिए। यह आज के चलन में नाभिकीय निवारक रणनीति पर भी उतना ही सत्य है। विश्वसनीय व प्रभावकारी होने के लिये निवारक रणनीति शत्रु के मन में भय उत्पन्न करने में समर्थ होनी चाहिए।

अध्याय 8

जंग का संचालन

इस अध्ययन को प्रारंभ करने से पूर्व पहले हम युद्ध के संचालन के विषय में परंपरागत सिद्धांतों को पुन: संक्षेप में दोहरायें, जो इस विषय पर उस कुरआनी सिद्धांत की पृष्ठभूमि में दी गयी हैं जिसका हम अध्ययन करेंगे। अपने कुशाग्र कार्य 'स्ट्रैट्जी: द इनडायरेक्ट अप्रोच' में लिडल हर्ट ने युद्ध के इतिहास से उन अनुभवों की कुछ सच्चाइयों का सारसंग्रह बनाने का प्रयास किया, जो उनको 'सिद्ध प्रमाण' होने योग्य सार्वभौमिक व मौलिक लगे। उनके अनुसार, ये सूक्तियां युक्तियों के जैसे ही रणनीति पर भी अनुप्रयुक्त होते हैं। ये महान सैन्य विचारक इस सामान्य निष्कर्ष पर पहुंचे कि युद्ध के सभी सिद्धांत एकल सिद्धांत में संघनित किये जा सकते हैं और वह एकल सिद्धांत है दुर्बलता के विरुद्ध शक्ति का संघनन। इस सिद्धांत को क्रियान्वित करने के लिये उन्होंने आठ नियम प्रस्तुत किये, जिनमें छह सकारात्मक और दो नकारात्मक हैं। सकारात्मक नियम थे: लक्ष्य को बनाये रखना, अंत तक साधनों का समायोजन, न्यून अपेक्षा और प्रतिरोध की धारा को ग्रहण करना, बहु-लक्ष्यों को भेदने वाली परिचालन प्रणाली का बीड़ा उठाना और यह सुनिश्चित करना कि योजनाएं व विन्यास लचीली एवं परिस्थिति-ग्राह्य हों। नकारात्मक नियमों में उन्होंने कहा कि एक ही बार में सारी शक्तियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए तथा जब एक बार आक्रमण विफल हो जाए, तो पुन: उसी ढंग या उसी रूप में आक्रमण नहीं करना चाहिए।

नेपोलियन ने प्रयास, आक्रामक कार्रवाई, सहसा आक्रमण और सुरक्षा के संघनन पर बल दिया। क्लाजविट्ज ने युद्ध के दो प्राथमिक नियमों का क्रमिक विकास किया। ये दो नियम थे: युद्ध के मुख्य रणक्षेत्र में निर्णयशक्ति का प्रवर्तन करने वाले प्रमुख शत्रु बल के विरुद्ध क्षमतावान प्रयास व कार्रवाई का संघनन।

फॉश के विचार में युद्ध के दो निर्णायक नियम बल की सुव्यवस्था और कार्रवाई की स्वतंत्रता थी। आंद्रे बोफ्र फॉश से सहमत थे, पर उन्होंने कहा कि इन दोनों नियमों को क्रियान्वित करने के लिये दो प्रगतिशील कदम उठाना आवश्यक होता है। पहला कदम यह है कि आक्रमण के लिये निर्णायक बिंदु का चयन करना और दूसरा ऐसा प्रारंभिक युद्धाभ्यास, जो निर्णायक बिंदु पर पहुंचने में समर्थ बनाये।

क्रांति के युद्ध के चैम्पियन इस समस्या के प्रति पृथक दृष्टिकोण रखते थे। लेनिन और स्टालिन ने युद्ध के सिद्धांत और अभ्यास को तीन मुख्य नियमों से जोड़ा था। उन्होंने विजय का मार्ग प्रशस्त करने के लिये देश व सेना की एकता, सुरक्षा और पिछली पंक्ति के क्षेत्रों की सुरक्षा और सैन्य कार्रवाई से पूर्व मनोवैज्ञानिक कार्रवाई पर बल दिया था। माओत्सेतुंग ने छह नियमों का समर्थन किया। उन्होंने अनुशंसा की कि शत्रु की बढ़त के सामने संकेंद्रित प्रतिकार हो और यदि शत्रु प्रतिकार करे, तो अपने सुरक्षा बलों के आगे भेजा जाए। उनके अनुसार रणनीतिक रूप से एक और पांच का अनुपात पर्याप्त है, किंतु युक्तिसंगत रूप से पांच और एक का अनुपात आवश्यक है। उन्होंने यह भी कहा कि सेना और नागरिक जनसंख्या के बीच निकट सामंजस्य होना चाहिए और यह भी कि सेनाओं को शत्रु से बचाव करने में समर्थ होना चाहिए।

समय-समय पर अन्य सिद्धांतों के प्रणेता भी आते रहे हैं। मैकिंडर और स्पक्सिमैन जैसे भू-राजनीतिज्ञों ने रणनीति के अनुप्रयोग को भूगोल में देखा। डाऊहेट ने निष्कर्ष दिया कि वायुशक्ति परिणाम की एकमात्र भुजा होती है। अपने अविष्कार के आरंभिक स्तरों पर परमाणु शक्ति परम शस्त्र के रूप में देखी जाती थी। अपने-अपने समय में यूनानी फलैंक्स, रोमन लीजन, महान फ्रेडरिक का आब्लीक आर्डर, प्रथम विश्व युद्ध के ट्रेंच वारफेयर और द्वितीय विश्वयुद्ध के 'ब्लिट्जरीग' को भी युद्ध के संचालन पर परिणाममूलक प्रभाव देने वाला माना जाता था। जैसे-जैसे सैन्य ज्ञान बढ़ा, रणकौशल के अभ्यास और युद्ध में नियमों व सिद्धांतों के पालन के बीच विवाद उत्पन्न हुआ। एक विचारधारा ने कहा कि मान्यताप्राप्त सिद्धांतों का पालन युद्ध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

दूसरी विचारधारा ने सिद्धांतों को रणकौशल का सहायक माना और कहा कि रणकौशल ही एकमात्र निर्णायक कारक होता है। तकनीक के विकास के साथ आज का संघर्ष 'मानव' व 'मशीन' के बीच होने लगा है। जहां कुछ तकनीक को युद्ध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक मानते हैं, वहीं कुछ ऐसे भी हैं जो अभी भी अति प्राचीन मानव कारक की महत्ता पर बल देते हैं। वह समय भी आ जा रहा है, जहां 'मशीन' इतने आधुनिक व जटिल होते जा रहे हैं कि मनुष्य के लिये उनका प्रयोग करना कठिन हो रहा है।

युद्ध संचालन के समकालीन विचार में युद्ध के सिद्धांतों पर बड़े परिमाण में निर्भरता रखी जाती है। सभी सैन्य विचारक सिद्धांतों के एक समुच्चय एकमत होने की बात से सहमत नहीं होते। समय-समय पर प्रणीत सिद्धांतों की सूची दो दर्जन से अधिक है, किंतु सैन्य विज्ञान में जो सिद्धांत सामान्यत: पढ़ाये जाते हैं, वे हैं लक्ष्य की निरंतरता, आक्रामक कार्रवाई, संघनन, सहकार व समन्वय, प्रयास, सुरक्षा, मनोबल, प्रशासन की व्यवस्था एवं कमांड की एकता। जंग के संचालन पर कुरआन की उक्तियों में निर्णय करने की कला, उद्देश्य की सर्वोच्चता, लक्ष्य का चयन, निरंतर अग्रगामिता व संघर्षशीलता, स्थितियों का तुलनात्मक मूल्यांकन, प्रभुत्व व आक्रामकता, इच्छा व दृढ़निश्चय, धैर्य व गंभीरता, दृढ़ता व निष्ठा और नमाज सम्मिलित है। जंग की रणनीति के कुरआनी अवधारणा की समग्र रूपरेखा में ये नियम मुस्लिम फौज पर स्थिरता, आशा, विश्वास और नैतिक प्रधानता देते हैं तथा शत्रु के मन में भय उत्पन्न करते हैं। जंग के इन नियमों से प्रत्येक की संक्षिप्त व्याख्या नीचे दी गयी पंक्तियों में की गयी है।

निर्णय क्षमता: कुरआन ने पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) को निर्देश दिया, ''उनसे भी प्रकरण में परामर्श करो, फिर जब कोई दृढ़ संकल्प ले लो, तो अल्लाह पर विश्वास करो। क्योंकि अल्लाह उनसे प्रेम करता है, जो उसमें विश्वास रखते हैं।''[1]

उहुद के अवसर पर रणक्षेत्र के विकल्प को लेकर निर्णय के संबंध में असमंजस व्याप्त हो गया, तो ये पंक्तियां भेजी गयीं और इनके तीन निहितार्थ थे। पहला यह कि जंग से संबंधित निर्णय धैयपूवर्क, सुविचारित, आद्योपांत व विस्तृत विचार-विमर्श के पश्चात लिया जाए। दूसरा अंतिम निर्णय का अधिकार कमांडर पर छोड़ दिया जाए। तीसरा, एक बार निर्णय हो जाने पर इस पर एकनिष्ठ ध्यान व समर्पण के साथ चला जाए। जब सबकुछ 'मानवोचित' निर्णय लेने की प्रक्रिया में चले गये हों, तो अल्लाह में विश्वास बनाये रखना चाहिए और सभी प्रकार के भय, संदेह व पूर्वाग्रहों को हटा देना चाहिए।

लक्ष्य की प्रमुखता: एक बार निर्णय हो जाए, तो जंग संचालन के सभी स्तरों पर लक्ष्य को प्रमुख व सबसे ऊपर रखा जाना चाहिए तथा अधिकतम उत्साह के साथ उस पर लग जाना चाहिए। अज्ञानता के दिनों में लड़ाकों के मन में जंग में प्राप्त धन और जंग के समय बनाये गये बंदियों को छोड़ने के बदले मिलने वाले धन के लिये बड़ा लोभ होता था। अल्लाह के आदेश से पवित्र कुरआन ने इन प्रलोभनों को शत्रु को नष्ट करने के प्राथमिक व अधिभावी लक्ष्य से जोड़ दिया। जंग की लूट और बंदी-मुक्ति धन (फिरौती) या बंदियों पर उदारता को द्वितीयक स्थान पर रख दिया गया और इन पर तभी निर्णय किया जाना था 'जब जंग समाप्त हो जाए'[2] अथवा वैकल्पिक रूप से जब 'मुसलमान उस भूमि को पूर्णत: पराजित कर दें।'[3]

लक्ष्य का चयन: बद्र के अवसर पर पवित्र कुरआन ने लक्ष्य के चयन को लेकर मुसलमानों के लिये निर्देश निर्गत किया। इसमें कहा गया, ''उनकी गरदनें उतार दो और उनकी उंगलियां काट डालो।''[4] शरीर का सबसे संवेदनशील अंग गरदन के ऊपर होता है। इन अंगों पर प्रभावकारी प्रहार शत्रु को पूर्णत: समाप्त कर सकता है। यद्यपि बद्र में कुरैश कवच धारण किये हुए थे। पवित्र कुरआन ने मुसलमानों को परामर्श दिया कि ऐसे शत्रुओं की उंगलियां काट डालो। अत: जंग में हमें शत्रु के सबसे संवेदनशील व आघातयोग्य अंग को पहचान कर उस पर प्रहार करना चाहिए तथा उसे पूर्णत: समाप्त कर देने का लक्ष्य रखना चाहिए। जब ऐसा करना न संभव हो तो हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि हम ऐसे लक्ष्य का चयन करें, जिस पर प्रहार करने से शत्रु अपने शस्त्र चलाने अथवा हम से संघर्ष करने में असमर्थ हो जाए। हमें अपनी दुर्बलताओं के साथ सीधे शत्रु के बल पर प्रहार करने से सदैव बचना चाहिए।

निरंतर प्रयास व संघर्षशीलता: कुरआन ने मुसलमानों का आह्वान किया कि निर्णय लेने और लक्ष्य के चयन के पश्चात उद्देश्य की प्राप्ति की ओर निरंतरता व सक्रियता से आगे बढ़कर प्रयास करते रहें तथा संघर्ष करते रहें। इस विषय पर दोहराये गये कुरआनी निर्देश थे, ''आगे बढ़ो और अल्लाह के मार्ग में जिहाद करो। यही तुम्हारे लिए उत्तम है, किंतु यदि तुम समझ पाओ।''[5] आगे बढ़ने और संघर्ष करने का आशय अल्लाह

---

[1] आले-इमरान: 159

[2] मोहम्मद: 4

[3] अन्फाल: 67

[4] अन्फाल: 12

[5] तौबा: 41

के मार्ग में प्राण या धन अथवा दोनों से जिहाद करना है। यह बहु एवं वैकल्पिक योजनाओं, कार्य-प्रणालियों व तकनीकों का प्रयोग करते हुए लक्ष्य का पीछा करने को कहता है। लक्ष्य का पीछा करने में प्रारंभ किये गये अनवरत, दृढ़निश्चयी व आद्योपांत प्रयास आज नहीं तो कल सफलता प्रदान करते ही हैं। यद्यपि इस सद्गुण की वास्तविक परीक्षा प्रतिकूल स्थितियों में होती है, न कि तब जब समृद्धि और अनुकूल स्थिति हो। चाहे जितनी कठिन परिस्थितियां हों, जिहाद पूरे उत्साह व आत्मविश्वास के साथ करते रहना चाहिए।

स्थितियों का तुलनात्मक मूल्यांकन: जंग दो या दो से अधिक विरोधी बलों के मध्य गुत्थमगुत्था का खेल है। पवित्र कुरआन ने मुसलमानों से कहा है कि फौजी स्थिति का मूल्यांकन करते समय शत्रु की स्थिति से अनभिज्ञ नहीं रहो। जब दोनों पक्षों का सापेक्ष मूल्यांकन किया जाता है, तभी सही चित्र उभर कर आता है। कुरआन ने मुसलमानों को आश्वस्त किया, ''यदि तुम्हें कोई घाव लगा है, तो शत्रु को भी इसी के समान घाव लग चुका है।''[6] इसी प्रकार इसमें कहा गया, ''तुम शत्रु जाति का पीछा करने में शिथिल न बनो। यदि तुम पर कठिनाई आयी है, तो तुम्हारे समान उन पर भी कठिनाइयां आयी हैं। पर अल्लाह से जो आशा तुम रखते हो, वो नहीं रखते।"[7] प्रतिकूल परिस्थितियों में भी शत्रु की दुर्बलताओं को पहचानना और उसका लाभ उठाना रणकौशल का सर्वोच्च कार्य है।

महान मुस्लिम जनरल खालिद बिन वलीद इस कला के सिद्धहस्त थे और उनकी विजयों में इस कला का बड़ा योगदान है। वही कमांडर सफल होता है, जो जंग के संचालन के सभी स्तरों पर अपनी स्वयं की विशेषताओं और दुर्बलताओं का सटीक आंकलन करने के साथ ही शत्रु पक्ष की विशेषताओं व दुर्बलताओं को भी ठीक से पहचान सके।

प्रभुत्व व आक्रामकता: पवित्र कुरआन ने इच्छा प्रकट की है कि मुसलमान फौज सदा अपने शत्रुओं की तुलना में सर्वोच्च, प्रभुत्वसम्पन्न व प्रभावशाली रहे। कुरआन ने उन्हें निर्देशित किया, "जब पवित्र महीने बीत जाएं, तो मूर्तिपूजकों की हत्या करो, उन्हें जहां पाओ पकड़ो, घेरो और उनकी घात में रहो।''[8] यह पुस्तक चाहती है कि मुसलमान साहसी, आक्रामक, नपी-तुली व सुविचारित योजना और जंग संचालन के माध्यम से शत्रु पर चढ़ाई की पहल करें। हम आगे देखेंगे कि संख्या व संसाधन में अत्यंत न्यून होने के बाद भी पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) ने शत्रु को कभी पहले आक्रमण का अवसर नहीं लेने दिया। रसूल के फौजी अभियानों से हमें उनके द्वारा पहल बनाये रखने के लिये अपनायी गयी कुछ कार्य-प्रणालियों की झलक मिलती है।

इच्छा व दृढ़निश्चय: पवित्र कुरआन ने मुसलमानों को ढांढस बंधाया, "तुम निर्बल न बनो और न ही संधि के लिये शत्रु को पुकारो। तुम ही सबसे ऊपर रहोगे, क्योंकि तुम्हारे साथ अल्लाह है और वह तुम्हारे अच्छे कर्म को व्यर्थ नहीं जाने देगा।''[9] इस विषय-वस्तु पर पुस्तक ने मुसलमानों को निर्देश दिया, ''तो तुम निराश मत हो, हताशा के भंवर में न फंसो। क्योंकि यदि तुम अल्लाह और उसके रसूल पर सच्चा विश्वास करते हो, तो तुम ही सर्वोच्च रहोगे।"[10] उहुद की जंग के समय घेर लिये निराशा का संकेत करते हुए पुस्तक ने कहा, ''कितने ही रसूल थे, जिन्होंने अल्लाह के मार्ग में जिहाद किया और जिनके साथ होकर बहुत से अल्लाह वालों ने जंग किया? किंतु यदि अल्लाह के मार्ग में उन पर विपत्ति भी आयी तो वे निराश नहीं हुए और न ही वे हृदय से दुर्बल हुए, न ही साहस छोड़ा।"[11]

उहुद में गंभीर खतरे के सामने धरातल पर डटे हुए गिने-चुने अविचलित लोगों के विषय में टिप्पणी करते हुए कुरआन ने कहा, ''जिन्होंने घायल होने के बाद भी अल्लाह और रसूल की पुकार सुनीं, जिन्होंने सुकर्म किया तथा अल्लाह से डरे, उन्हें बड़ा प्रतिफल मिला। ये वे

[6] आले-इमरान: 140

[7] निसा: 104

[8] तौबा: 5

[9] मुहम्मद: 35

[10] आले-इमरान: 139

[11] आले-इमरान: 146

लोग हैं, जिनसे लोगों ने कहा कि तुम्हारे विरुद्ध शत्रु की बड़ी सेना एकत्र हो रही है, उस सेना से भय खाओ। पर यह सुनकर उनकी मजहबी निष्ठा और बढ़ गयी।''[12]

इस अत्यंत महत्वपूर्ण विषय पर कुरआन का संदेश यह है कि पूर्ण समर्पण व निष्ठा एवं सबकुछ त्याग करने की इच्छा के साथ अल्लाह के उद्देश्य के लिये लड़ने वाले मोमिन के पास निराशा के भंवर में फंसने अथवा इच्छा व दृढ़निश्चय के दुर्बल होने का कोई कारण नहीं होता है।

धैर्य एवं गंभीरता: पवित्र कुरआन ने धैर्य व गंभीरता (अरबी में सब्र) पर बल देते हुए इन्हें जंग जीतने का प्रमुख कारकों में से एक बताया है। इस पुस्तक ने कहा है, ''अल्लाह उनके साथ है, जो धैर्य से काम लेते हैं।''[13] पवित्र कुरआन यह भी दृढ़ कथन देती है कि धैर्य व गंभीरता के प्रयोग से संख्यात्मक न्यूनता की प्रतिपूर्ति कर सकती है। बद्र में अल्लाह का आदेश आया, "हे रसूल! मोमिनों को जंग की प्रेरणा दो। यदि तुममें से बीस धैर्यवान होंगे, तो दो सौ पर विजय प्राप्त कर लेंगे और यदि तुमसे सौ ऐसे होंगे, तो उन काफ़िरों के एक हजार को नष्ट कर देंगे। क्योंकि वे समझ-बूझ नहीं रखते।''[14] अल्लामा अब्दुल्ला युसुफ अली ने टिप्पणी की है, ''अरबी शब्द सब्र के अनेक आशय हैं, जिसे अंग्रेजी के एक शब्द से समझ पाना असंभव है।'' उनके विचार में इसका आशय ऐसे धैर्य से है, जिसमें सम्यकता का भाव हो, न कि आतुरता का। इसका यह भी अर्थ है कि उद्देश्य में स्थिरता, दृढ़ता और निरंतरता हो। इसका अर्थ व्यवस्थित कार्रवाई करना है, न कि अनियमित अथवा संयोगवश की गयी कार्रवाई। इसमें दुख, कष्ट, संकट अथवा पराजय में निवृत्ति व समझौते के सहर्ष आचरण की आवश्यकता होती है। हक़्क़ानी इसकी व्याख्या प्रज्ञा का अनुसरण एवं भय, क्रोध व वासना पर नियंत्रण के रूप में करते हैं। धैर्य साहस का एक ऐसा पक्ष है, जो उच्चतम कोटि की वृत्तिक योग्यता द्वारा पोषित व प्रोत्साहित होती है।

जंग में मानव व उपकरणों क्षति होगी, योजनाएं अव्यवस्थित हो जाएंगी, उसमें सुधार की आवश्यकता पड़ेगी, जंग के टकराव से योजनाओं का संचालन अस्तव्यस्त कर करेगा, शत्रु द्वारा स्थितियां छिन्न-भिन्न कर दी जाएंगी, आक्रमण रोकना पड़ जाएगा और यहां तक कि पीछे हटना पड़ जाएगा। विपत्ति के बाद भी इन स्थितियों से जूझने के लिये वृत्तिक योग्यता से उत्पन्न होने वाले 'धैर्य' और नैतिक साहस की आवश्यकता पड़ेगी और लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये 'गंभीरता' की आवश्यकता होगी।

दृढ़ता एवं निरंतरता: दृढ़ता और निरंतरता धैर्य व गंभीरता के साथ-साथ चलती हैं। तबूक की जंग के समय मुसलमानों के मार्गदर्शन के लिये अल्लाह द्वारा भेजा गया आदेश था, ''हे मोमिनो! अपने आसपास के काफिरों से जंग करो और ऐसा करो कि वे तुममें कुटिलता पायें।''[15] कुरआन में इसी प्रकार के निर्देश कई अन्य अवसरों पर भी दिये गये हैं। मुसलमानों को दी गयी दृढ़ता व निरंतरता की अवधारणा को लेकर कुरआन पुस्तक कहती है, ''निस्संदेह अल्लाह उनसे प्रेम करता है, जो अल्साह के मार्ग में ऐसे पंक्तिबद्ध होकर जंग करते हैं, जैसे कि वे सीमेंट से बनी ठोस दीवार हों।"[16] जंग के संचालन के समय पवित्र कुरआन ने केवल दो अवसरों को छोड़कर, अन्य अवसरों पर मुसलमानों के लिये शत्रु को पीठ दिखाकर भागना निषिद्ध किया है। इसमें निर्देश दिया गया है, ''हे मोमिनो! जब काफ़िरों की सेना से भिड़ो, तो उन्हें पीठ न दिखाओ। पुन: आक्रमण करने की रणनीति के अंतर्गत अथवा या फौज की टुकड़ी के पीछे हटने की स्थिति के अतिरिक्त जो कोई भी उस दिन अपनी पीठ दिखायेगा, वह अल्लाह के प्रकोप से घिर जाएगा। वास्तव में ऐसा व्यक्ति नर्क (दोजख) में जाएगा।"[17] पीछे हटने के लिये जिन दो स्थितियों में छूट दी गयी है, वो जंग के दांवपेंच और विलग हो गयी फौज की टुकड़ी का मुख्य फौज से मिलने के लिये पीछे हटने की स्थिति है। अल्लामा अब्दुल्ला युसुफ अली जंग के दांव-पेंच की व्याख्या 'रेक्युलर पूर मियूज साटर' अर्थात पुन: छलांग लगाने के लिये कदम पीछे खींचने अथवा शत्रु को कपट से छलने के रूप में करते हैं।

---

[12] आले-इमरान 172-173

[13] अन्फाल: 46

[14] अन्फाल: 65

[15] तौबा: 123

[16] साफ्फ: 4

[17] अन्फाल: 15-16

त्याग: कुरआनी परिप्रेक्ष्य में सर्वोच्च उपलब्धि सर्वोच्च त्याग से प्राप्त होती है। त्याग मनुष्य व अल्लाह के बीच प्रेम का धागा तैयार करता है। इसमें मनुष्य शाश्वत मुक्ति और अपनी आध्यात्मिक प्रत्याशा की पूर्ति हेतु इस संसार की क्षणभंगुर वस्तुओं का त्याग करता है।

पवित्र कुरआन मजहबी अपेक्षा का वर्णन 'सर्वोच्च उपलब्धि' के रूप में करता है। सर्व-सामर्थ्यवान अल्लाह कहता है, "कौन है, जो अल्लाह को अच्छा उधार देगा? अल्लाह उस उधार को कई गुना करके लौटायेगा और उसके लेखा में डाल देगा।"[18] त्याग कष्ट, कठिनाई, अभाव, भूख, प्यास, थकान, चोट और मृत्यु सहने के रूप में हो सकता है। अल्लाह के उद्देश्यों को पूरा करने की मंशा से त्याग की भावना नि:स्वार्थ भाव से प्रेरित की जानी चाहिए। त्याग का पुरस्कार इस संसार में जीवन का सम्मान और मृत्योपरांत मुक्ति है। कुरआन वचन देती है, ''तो उनके अल्लाह ने उनकी (प्रार्थना) सुन ली और कहा कि: निस्संदेह मैं तुममें से किसी के कार्य को व्यर्थ नहीं जाने, नर हो अथवा नारी। तो जिन्होंने हिजरत की (अपने घर छोड़े) या जो अपने घरों से निकाले गये, मेरे मार्ग में सताये गये और जंग किया तथा मारे गये, तो हम अवश्य उनके दोषों को क्षमा कर देंगे तथा उन्हें ऐसे बागों वाले जन्नत में प्रवेश देंगे, जहां नीचे नदियां बह रही हैं। ये अल्लाह के पास से उनका प्रतिफल होगा और अल्लाह के ही पास अच्छा प्रतिफल है।"[19] अल्लाह द्वारा इन पंक्तियों में इस पर बल देने के उद्देश्य से प्रयुक्त पुरुषवाचक एकवचन संज्ञा का प्रयोग ध्यान देने योग्य है और इससे त्याग के मूल्य को लेकर हमारे मन में कोई संशय नहीं रह जाता है। पवित्र कुरआन इस प्रकार के निर्देशों से भरी पड़ी है। इतिहास इस तथ्य से भरा हुआ है कि आत्म-त्यागी राष्ट्र सदा विजेता के रूप में उभरे हैं।

विचारों व कार्यों में एकरूपता: पवित्र कुरआन ने मोमिनों का आह्वान किया है कि वे जंग लड़ते समय पारस्परिक प्रेम, स्नेह, आदर और चिंता के उच्च मानकों का प्रदर्शन करें। यह उन्हें आदेश देता है कि वे अल्लाह की रस्सी को एकसाथ सामूहिक रूप से और दृढ़ता से पकड़ें तथा फौजियों में एकता व सामंजस्य बनायें। पुस्तक ने कहा, ''हे मोमिनो! तुम धैर्य रखो, एक-दूसरे को थामे रखो, जिहाद के लिए तैयार रहो और अल्लाह से डरते रहो।''[20] पवित्र कुरआन ने उनको चेताया है कि अपनी फौज में विखंडन न होने दो। इसमें कहा गया है, ''अल्लाह और उसके रसूल के आज्ञाकारी रहो। आपस में विवाद न करो, अन्यथा तुम दुर्बल हो जाओगे और तुम्हारे पांव उखड़ जाएंगे।''[21]

अल्लाह द्वारा दी गयी एकता की अवधारणा को मुसलमानों को सौंपते हुए इस पुस्तक कुरआन ने नियम दिया, "इसके अतिरिक्त उसने (अल्लाह) उनके मन में स्नेह भर दिया। इस धरती पर जो कुछ भी है, यदि तुम वो सब भी व्यय कर देते, तो भी उनमें आपसी प्रेम उत्पन्न नहीं कर करते थे। वास्तव में अल्लाह प्रभुत्वशाली व निपुण है।''[22] एक अन्य अवसर पर पुस्तक ने कहा, ''मुहम्मद अल्लाह का रसूल है और जो उसके साथ हैं, वे काफिरों पर भारी हैं। पर तुम लोग आपस में एक-दूसरे के प्रति करुणा बनाये रखो।"[23] मुस्लिम फौजी इतिहास बताता है कि उनकी सबसे बुरी पराजय के सबसे बड़े उत्तरदायी कारकों में मुसलमान फौज में एकता का न होना था। 721 ईस्वी में फ्रांस में लड़े गये टूअर्स की जंग में आंतरिक कलह के कारण मुसलमानों की पराजय इसका बड़ा उदाहरण है। यदि उनमें आपसी असंतोष न होता तो उस जंग में जीत की पूरी संभावना थी और परिणामस्वरूप वे यूरोप के इतिहास की धारा मोड़ देते।

सुरक्षा व सावधानी: फौज को शत्रु के औचक आक्रमण से सुरक्षा के लिये पूरी सावधानी रखनी चाहिए। पवित्र कुरआन ने परामर्श दिया, "हे मोमिनो! शत्रु से बचाव के साधन तैयार रखो, फिर टुकड़ी में अथवा एक साथ निकल पड़ो।"[24] इसमें मुसलमानों को इसका भी निर्देश दिया गया है कि जब वे नमाज पढ़ रहे हों, तभी भी पूरी सावधानी रखें। इसमें कहा गया, "हे नबी! जब तुम जंग के मैदान में उपस्थित हो और नमाज पढ़ने जाओ, तो एक टोली तुम्हारे साथ खड़ा हो जाए और अपने हथियार लिये रहे। जब एक समूह सजदा कर ले, तो तुम्हारे पीछे हो जाए तथा जिसने नमाज़ नहीं पढ़ी है, वह दूसरा समूह आये और तुम्हारे साथ नमाज़ पढ़े और पहला समूह अपने हथियार लेकर खड़ा रहे।[25] पुस्तक ने

---

[18] बकरा: 245

[19] आले-इमरान: 195

[20] आले-इमरान: 200

[21] अन्फाल: 46

[22] अन्फाल: 63

[23] फतह: 29

[24] निसा: 71

[25] निसा: 102

आगे चेताते हुए कहा है, ''काफिर चाहते हैं कि तुम अपने हथियारों से निश्चेत हो जाओ और वे तुम पर यकायक धावा बोल दें। पर यदि वर्षा के कारण तुम्हें समस्या हो अथवा तुम अस्वस्थ हो तो अपने हथियार किनारे रख दो, पर अपने बचाव की सावधानी अवश्य रखो।"[26]

अनुशासन व आज्ञाकारिता: अनुशासन व आज्ञाकारिता अल्लाह की इच्छा के आगे समर्पण के मजहब इस्लाम के केंद्र में है। पवित्र कुरआन ने अनेक अवसरों पर इच्छापूर्वक व तत्पर आज्ञाकारिता की आवश्यकता पर बल दिया है। मुसलमानों ने अपने महान नेताओं का अनुसरण जिस अनुशासन व आज्ञाकारिता से किया है, वह प्रसिद्ध हो चुका है। यद्यपि कि समर्पण व आज्ञाकारिता के असंख्य उदाहरण हैं, पर हमें इस तथ्य को सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि अनुशासन व आज्ञाओं का उल्लंघन ही वह कारण था जो उहुद में मुसलमानों पर पड़ी विपदा के लिये उत्तरदायी था।

नमाज: कुरआन मुसलमानों का आह्वान करती है कि शांति के समय की तुलना में जंग संचालन के समय नमाज का अधिक सहारा लेना चाहिए। इस विषय पर कुरआनी सिद्धांत यह है कि नमाज अल्लाह व उसके रसूल में विश्वास को और सुदृढ़ करते हैं, जिससे मनोवैज्ञानिक दबावों से बचाव होता है। नमाज के विषय पर अनेक कुरआनी निर्देश हैं, पर यहां हम उनमें से कुछ का स्मरण करें। यह पुस्तक कहती है, "हे मोमिनो! जब किसी समूह से भिड़ो, तो जम जाओ और अल्लाह का और अधिक स्मरण करो। इसी से तुम्हें सफलता मिलेगी।""[27] नमाज अल्लाह की प्रतिक्रिया पर कहा गया है, "हे रसूल! जब मेरे गुलाम मेरे विषय में तुमसे प्रश्न करें, तो उन्हें बताओ कि निश्चय ही मैं उनके समीप हूं। मैं उनकी नमाज का उत्तर देता हूं। अतः उन्हें भी चाहिए कि मेरे प्रति आज्ञाकारी बनें तथा मुझ पर विश्वास रखें, जिससे कि वे सीधा मार्ग पायें।"[28]

---

[26] निसा: 102

[27] अन्फाल: 45

[28] बकरा: 186

अध्याय 9

कुरआनी फौजी विचारों का अनुप्रयोग

जंग की योजना

यह ध्यान होगा कि जिस दिन मूर्तिपूजकों ने इस्लाम के विरुद्ध युद्ध की स्थिति की घोषणा की थी, उसी दिन जंग की योजना का बीजारोपण हो गया था और उनके इस युद्ध से मुसलमानों की ओर से बिना किसी प्रत्युत्तर के यह योजना 12 वर्षों तक पनपती रही। मुसलमान मदीना प्रस्थान के पश्चात जंग में उतरे। तदोपरांत जंग द्विपक्षीय प्रकरण हो गया और लगभग आठ वर्षों की अवधि तक चला। आरंभिक पांच वर्षों की जंग के समय मक्का अरब का राजनीतिक केंद्र बना रहा और कुरैश लोग मुसलमानों के प्रति रणनीतिक रक्षात्मक स्थिति में रहे। उस अवधि में उन्होंने मुसलमान समुदाय को नष्ट करने की मंशा से मदीना पर तीन बड़े आक्रमण किये। वे बद्र में पराजित हुए, पर उहुद में उन्हें मुसलमानों पर सफल सैन्य विजय मिली। उहुद के पश्चात मदीना की परिधि पर रहने वाली मूर्तिपूजक जनजातियां और सक्रिय हो गयीं तथा मुसलमानों को पूर्णत: नष्ट करने के लिये नगर पर अनेक आक्रमण किये, किंतु विफल रहीं। दो वर्ष पश्चात मूर्तिपूजकों व यहूदियों के साथ मिलकर कुरैशों ने मदीना पर सबसे बड़ा आक्रमण किया। वे नगर की घेराबंदी में सफल रहे, पर अंतत: खंदक की जंग में वे पराजित हुए। इस पराजय से मदीना पर पुन: आक्रमण करने की उनकी सामर्थ्य नहीं बची और इससे लड़ाकों के बीच रणनीतिक संतुलन की स्थिति बनी। एक वर्ष पश्चात हुदैबिया में मुसलमानों व मक्कावासियों के बीच दस वर्ष की संधि हुई।

अरब 610 ईस्वी

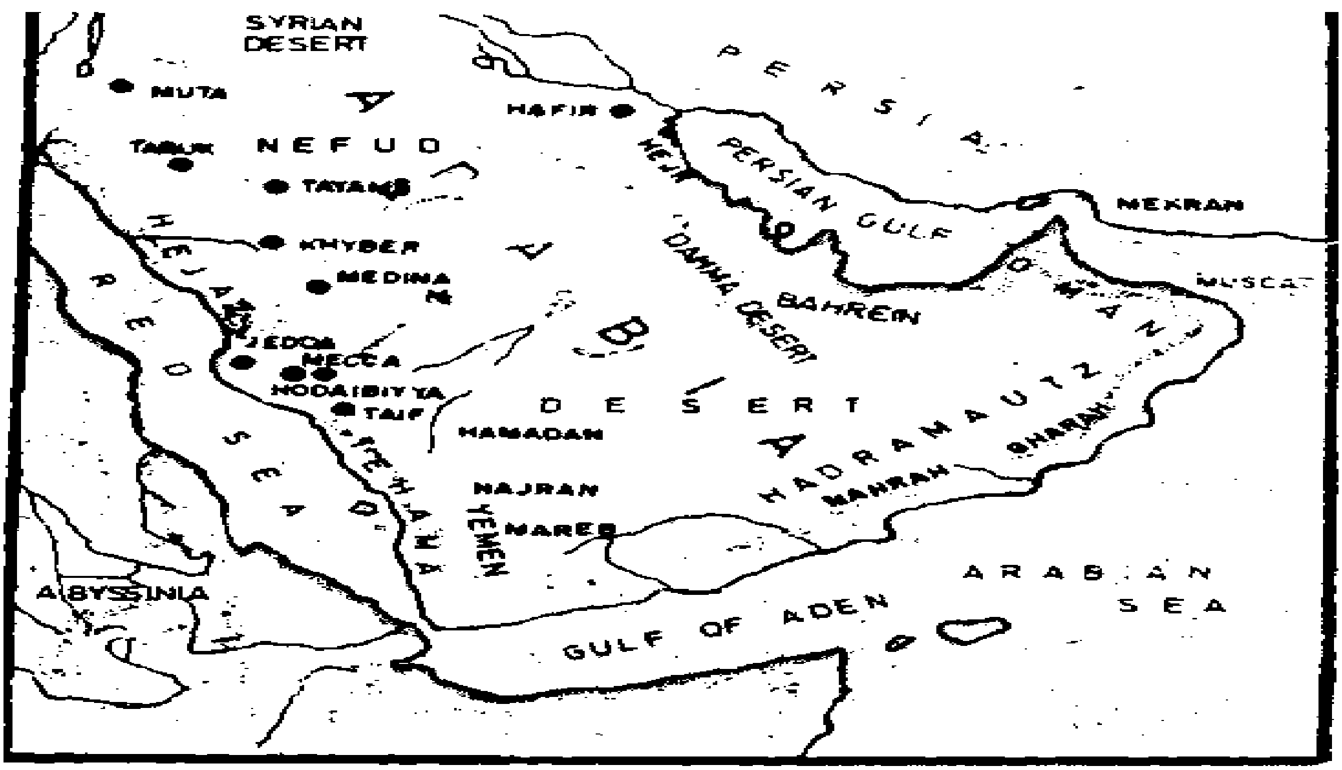

इससे एक ऐसे कालखंड का प्रारंभ हुआ, जिसमें उस क्षेत्र में राजनीतिक सत्ता के उपयोग को लेकर दोनों समुदाय बराबरी की स्थिति में आ गये। दो वर्ष पश्चात जब मक्का पर विजय प्राप्त हुई, तो मुसलमानों ने निर्णायक रूप से अपना लेखा-जोखा बराबर कर लिया और सत्ता मुसलमानों के पास स्थानांतरित हो गयी। इन दोनों कालखंडों के मध्य मुसलमानों ने उत्तरी अरब में हुनैन व ताइफ की विरोधी जनजातियों और

ख़ैबर, फिदक, दूमा व कुरा के यहूदी गढ़ों को अपने अधीन करने के लिये सफलतापूर्वक हमले किये। उत्तरी अरब के जंगी अभियानों से मुसलमानों का सम्पर्क रोमन सीरिया से हुआ और मुता व तबूक के रणक्षेत्र में दोनों पक्षों ने एक-दूसरे से दो-दो हाथ किये।[1]

632 ईस्वी के उस वर्ष जब इस्लाम के रसूल (उन पर शांति हो) ने अंतिम सांस ली, तो मुसलमान सम्पूर्ण अरब प्रायद्वीप जीत चुके थे। आकार में यह क्षेत्र रूस को छोड़कर पूरे यूरोप के बराबर था। मुहम्मद हमीदुल्लाह के अनुसार इतने बड़े भूभाग पर विजय प्राप्त करने में जंग लड़ते हुए केवल 150 लोग मारे गये और वह भी शत्रु पक्ष के।

दस वर्ष पूर्व जब मुसलमानों ने पहली बार हथियार उठाये, तो उस बैरी रेगिस्तान देश में उनका अस्तित्व लगभग न के बराबर था। जिस राजनीतिक, सामाजिक-आर्थिक व सैन्य वातावरण में उन्हें अपने जंग की योजना बनानी पड़ी और लड़नी पड़ी, वह अत्यंत जोखिम भरा था। राजनीतिक रूप से नये जन्मे उनके राज्य के सामने मदीना के सामर्थ्यवान व साधन-सम्पन्न यहूदियों के गुट थे। उस समय सामाजिक-आर्थिक स्थिति भी भयावह थी। अंसार और मुहाजिर दोनों पारस्परिक सामाजिक समन्वय बनाने की प्रक्रिया में थे और गंभीर आर्थिक समस्याओं का सामना कर रहे थे। फौजी रूप से मुसलमानों को अनेक शत्रुओं का सामना करना पड़ा रहा था। इन शत्रुओं में मक्कावासी, यहूदी, आसपास की मूर्तिपूजक जनजातियां और मुसलमानों में भितरघाती सम्मिलित थे। मुसलमानों के पास संसाधन भी न के बराबर थे। मुसलमानों की समस्या तब और बढ़ गयी, जब अन्य शत्रु गुटों के समर्थन से मदीना पर मक्कावासियों का आक्रमण आसन्न दिखने लगा।

उस स्तर पर पवित्र रसूल की मुख्य चिंता मदीना राज्य-नगर की सुरक्षा की थी। मदीना की सुरक्षा को लेकर बड़ा खतरा 400 मील दूर मक्का की ओर से था। यद्यपि मक्कावासियों से पहले यहूदियों, मूर्तिपूजकों व भितरघातियों की ओर से खतरा मंडरा रहा था और यह खतरा भी छोटा नहीं था। यदि प्राथमिकता के आधार पर इस खतरे से निपटने का निर्णय लिया जाता, तो पूरी मुसलमान फौज भी इसमें लग जाती और मुख्य शत्रु अछूता रह जाता। इसके विपरीत यदि मक्का के कुरैशों का नाश कर दिया जाता, तो इससे न केवल मुख्य शत्रु का खतरा सदा के लिये समाप्त हो जाता, अपितु शेष बचे अन्य शत्रुओं पर भी इससे भौतिक व मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रहार होता। सभी शत्रुओं से एक साथ निपटने में मुसलमान निश्चित रूप से संसाधनों के अभाव का सामना कर रहे थे। मुसलमानों की सुरक्षा के लिये यह महत्वपूर्ण था कि शत्रुओं को एक होने से रोका जाए। पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) ने संख्या में अनेक शत्रुओं से निपटने में मजहबी, कूटनयिक और फौजी साधनों का समन्वित, एकीकृत व संघनित प्रयोग किया। कूटनयिक प्रयास के अंतर्गत मदीना के उन यहूदियों को मित्रता, सहयोग व पारस्परिक सहायता की संधि के माध्यम से ठंडा किया गया जो राज्य की सुरक्षा पर आसन्न खतरा थे। नगर के चारों ओर सुरक्षा घेरा बढ़ाने के लिये आसपास की जनजातियों के साथ मित्रता व सहयोग की संधि भले न हो पायी हो, परंतु उनके साथ तटस्थता की संधि कर ली गयी। वैसे तो उस समय तक भितरघातियों की संख्या इतनी नहीं थी कि उस ओर चिंतित हुआ जाए, पर उन्हें यह सोचकर किनारे कर दिया गया कि उनसे बाद में निपटा जाएगा।

मजहबी प्रयास के अंतर्गत मोमिनों से मूर्तिपूजकों के समक्ष धर्मोपदेश और आचरण द्वारा अपनी सम्पूर्ण 'जीवन पद्धति' का प्रदर्शन करने को कहा गया, जिससे कि उन्हें इस्लाम की ओर आकर्षित किया जा सके। मक्कावासियों के विरुद्ध जो रणनीति अपनायी गयी, उनमें आर्थिक अवरोध लगाकर और मनोवैज्ञानिक अस्त-व्यवस्तता फैलाकर यंत्रणा देना था। इस रणनीति का मुख्य आशय यह था कि प्रारंभ में मक्का और सीरिया के मध्य व्यापारिक मार्ग को छिन्न-भिन्न कर दिया जाए और बाद मक्का और मेसोपोटामिया के बीच के व्यापारिक मार्ग को भी नष्ट कर दिया जाए। सीरिया को जाने वाला मार्ग मदीना और लालसागर के मध्य से होकर जाता था तथा इसके बीच की अधिकतम दूरी 80 मील थी। मुसलमानों के लिये इस मार्ग पर हमला करना सरल भी था।

यह मार्ग भले ही मक्का के विशिष्ट व्यापारिक समुदाय की एकमात्र वाणिज्यिक जीवन रेखा नहीं था, पर यह सबसे महत्वपूर्ण तो था ही। कुरैशों का आर्थिक जीवन लगभग पूर्णत: सीरिया के साथ व्यापार पर निर्भर था और मक्का और मेसोपोटामिया के मध्य बहुत थोड़ा व्यापार होता था। मुसलमानों का यह अनुमान ठीक ही था कि सीरिया के व्यापारिक मार्ग को सफलतापूर्वक ठप कर देने से कुरैश आर्थिक व मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार से हिल जाएंगे। वहीं दूसरी ओर मूर्तिपूजकों की रणनीति यह थी कि बल का प्रयोग करके मुसलमानों का पूर्णत: नाश

[1] पवित्र रसूल के फौजी अभियानों के लिये परिशिष्ट-1 देखें।

कर दिया जाए। वे इस प्रयास में थे कि मदीना की धरती पर मुसलमानों के पांव जमने से पहले ही उनको मिटा दिया जाए। इस रणनीति पर चलते हुए उन्होंने युद्ध की तैयारियां कीं और मुसलमानों की शत्रु जनजातियों से संधि व गठबंधन भी किया।

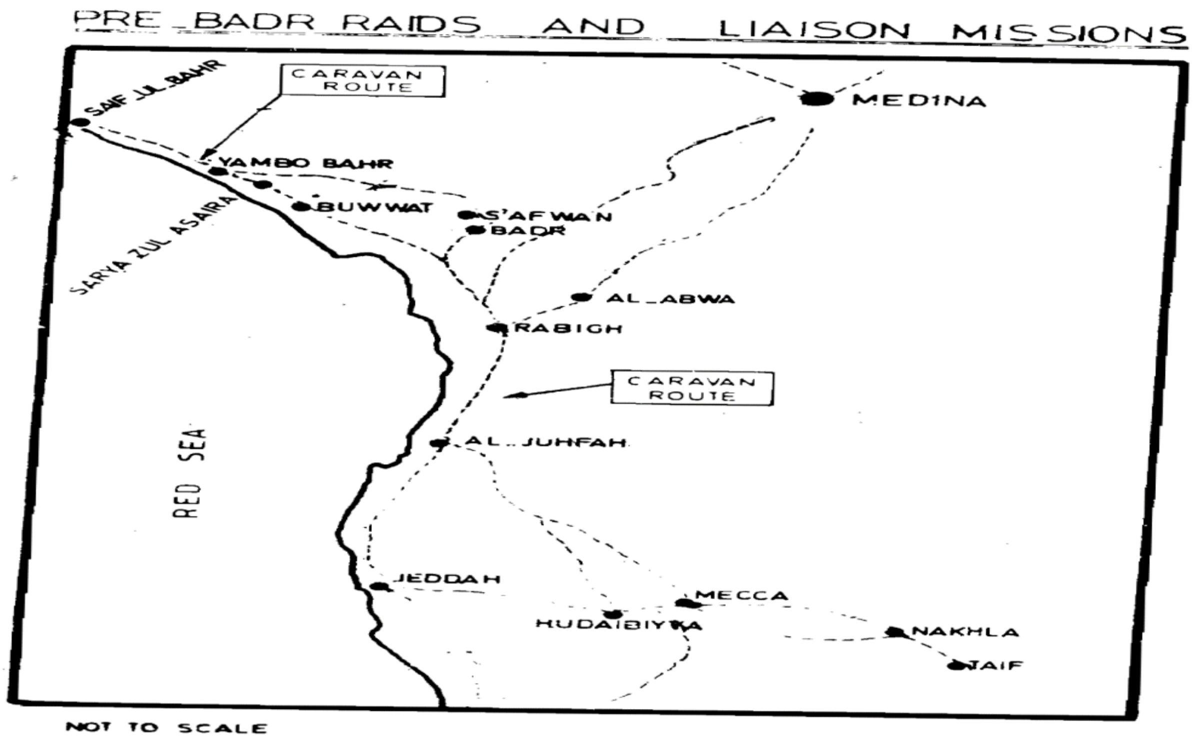

आरंभिक अभियान

जब जंग प्रारंभ हुई तो मुसलमानों ने पहल करते हुए अपने पत्ते खोले। रमजान 1 एएच और रजब 2एएच की अवधि के मध्य उन्होंने अनेक हमले किये और पड़ोसी जनजातियों के साथ मित्रवत् संबंधों की स्थापना के लक्ष्य पर कार्य किया, जिससे मदीना के चारों ओर सुरक्षा परिधि सुदृढ़ हो सके और कुरैशों को कारवां के मार्ग का प्रयोग करने से रोका जा सके अथवा उनके मार्ग में बाधा पहुंचायी जा सके। अनुमान के आधार पर इन अभियानों का प्रारूप तैयार किया गया और साहसपूर्वक इन्हें पूरा किया गया। सिफ़ल बहर, राबिग़, अब्वा, बुवात व साफ्वान जैसे दूर स्थित स्थानों पर भी कारवां के मार्ग को अवरुद्ध किया गया। मदीना से 400 मील दूर मक्का और ताइफ के मध्य नखला पर हमला किया गया। इन सारे अभियानों में केवल मुहाजिरों को सम्मिलित किया गया और ये सभी अभियान लगभग रक्तहीन रहे। ये अभियान सामान्यत: सफल रहे। इन अभियानों से कुरैश कारवां में भय डालने में सफलता मिली।

सीरिया से लौट रहे एक कुरैश कारवां पर बद्र में हमले की ऐसी एक योजना से मुसलमान अत्यंत कठिन स्थितियों में फंस गये थे।

मुसलमानों के हमले की आशंका को देखते हुए कारवां के कमांडर अबू सुफ्यान ने सहायता लाने के लिये तत्काल एक संदेशवाहक को मक्का भेजा। कुरैशों ने 1000 योद्धाओं की सेना भेजी। एक समय आया, जब तीनों पक्ष अर्थात अबू सुफ्यान का कारवां, रसूल का हमलावर दल और कुरैश सेना बद्र के निकट 25 मील की परिधि में आ गये, तो रसूल (उन पर शांति हो) ने इस स्थिति से निपटने के लिये जंगी परिषद की बैठक की।

मुसलमानों के पास आगे की कार्रवाई के लिये तीन विकल्प थे। पहला विकल्प यह था कि कुरैश सेना के बचाव में पहुंचने से पूर्व ही अत्यल्प सुरक्षा वाले अबू सुफ्यान के कारवां पर नियंत्रण कर लिया जाए। ऐसा करने में सफलता की संभावना अधिक थी, पर इससे मुख्य कुरैश सेना अछूती रह जाती और मदीना की सुरक्षा के लिये सबसे बड़े खतरा कुरैश सेना को मिटाने का अवसर हाथ से निकल जाता। दूसरा विकल्प यह था कि कुरैशों के किसी पक्ष को छुए बिना ही मदीना वापस निकल लिया जाए। यह कदम उस कठिन स्थिति से बच निकलने में समयानुकूल

था, किंतु यह मुसलमानों के उद्देश्य में बड़ी दीर्घकालिक बाधा बन जाता। इससे कुरैश और उनकी सहयोगियों का मन बढ़ जाता और वे मिलकर मदीना पर आक्रमण करते। अंतिम विकल्प यह था कि मुख्य कुरैश सेना के साथ भिड़ा जाए और उन्हें नष्ट किया जाए। यह कदम मदीना की सुरक्षा की दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त था, किंतु इसके लिये आवश्यक था कि मुसलमान ऐसी सेना को नष्ट करने का कौशल और साहस जुटा पाते, जो संख्या में उनकी तिगुनी थी और अस्त्र-शस्त्र में भी उन पर कई गुना भारी थी।

इसके अतिरिक्त किसी ठोस निर्णय पर पहुंचने के लिये अंसारों की प्रतिक्रिया भी महत्वपूर्ण कारक थी। वहां उपस्थित 313 मुसलमान लड़ाकों में अंसारों की संख्या 243 थी और अक़्बा की प्रतिज्ञा में अंसारों ने मदीना नगर के भीतर आक्रमण होने की दशा में ही मुसलमानों की रक्षा का वचन दिया था। जंगी परिषद में पवित्र रसूल ने स्थिति की स्पष्ट व खरा विश्लेषण प्रस्तुत किया और तीसरे विकल्प की अपनी प्राथमिकता का संकेत किया। फिर उन्होंने इस निर्णय पर अंसारों का मत लिया। अंसारों ने अपने पारंपरिक समर्पण व तत्परता से इस निर्णय पर सहमति व्यक्त की और तत्पश्चात बद्र में मुख्य कुरैश सेना से भिड़ने का निर्णय हुआ।

THE BATTLE OF BADR

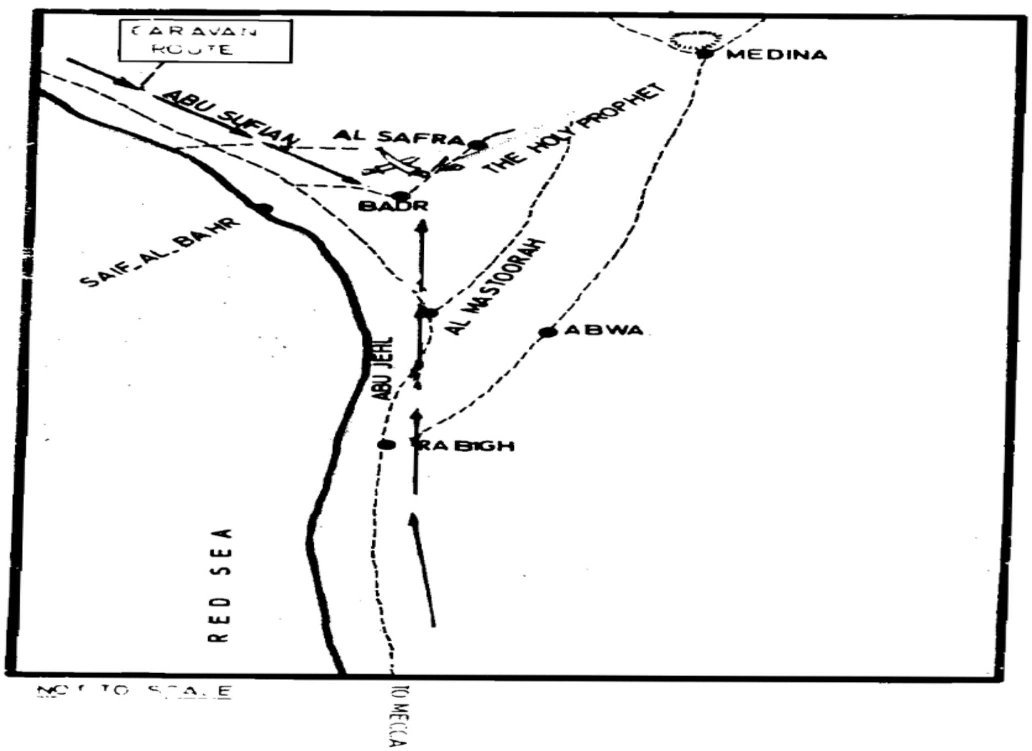

यह निर्णय कितना महत्वपूर्ण था, इसका अनुमान बद्र की जंग के उस विनाशकारी दिन रसूल द्वारा की गयी सुविख्यात टिप्पणी से लगाया जा सकता है। उन्होंने अपनी इबादत में अनुनय किया, "हे सर्व-सामर्थ्यवान अल्लाह! यदि आज ये 313 मारे गये, तो धरती पर तुम्हारी इबादत करने वाला कोई नहीं बचेगा।" छोटी प्रतीत होने वाली इस झड़प में जो दांव पर लगा था, वह हमारे संसार के रचयिता व उसकी रचना मानवजाति दोनों के विषय में आधारभूत व प्रमुख महत्व का था। इस जंग के परिणाम और इसके बाद होने वाले घटनाक्रमों ने सिद्ध किया कि पवित्र रसूल का निर्णय जितना स्पष्ट व साहसिक था, उतना ही सुनियोजित व सटीक भी था। संख्या में कम होने के बाद भी बद्र के मुसलमानों ने स्वयं को 'कुल साम्‍र्थ्य व प्रभावकारिता' में अपने शत्रु से श्रेष्ठ सिद्ध करके उनको पराजित किया।

बद्र की व्याख्या कुरआन के अन्फाल शीर्षक के उस अध्याय में की गयी है, जिसमें बद्र की जंग की सीख बतायी गयी है।[2] इन सीखों में जंग के उद्देश्य और इसके आयामों, रणनीति व संचालन के नियत पक्षों के विषय में बताया गया है। इनमें समाहित सीख जंग में मिले माल, बंदियों और उनसे मिलने वाली फिरौती से भी संबंधित है। अज्ञानता के दिनों में लड़ाके जंग में मिलने वाले माल के लिये बहुत लालायित रहते थे। यह पहला अवसर था, जब अरबों में मुसलमान और अ-मुसलमान के रूप में एक-दूसरे से भिड़ंत हुई थी। मुसलमानों ने जंग जीती और लूट का माल भी एकत्र किया। मोमिनों के एक धड़े में जंग के समय मिले लूट के इस माल को लेकर लालच सवार हो गया और वे इसके बंटवारे को लेकर अपने सहयोगियों से ही भिड़ गये। पवित्र कुरआन ने आदेश दिया कि जंग में लूटा गया माल अल्लाह और उसके रसूल का है और जब तक कि उस भूमि को भली-भांति न जीत लिया जाए, कोई बंदी नहीं बनाया जाएगा। सरल शब्दों में कहें तो इसका अर्थ हुआ कि अल्लाह के मार्ग में जंग करते समय मुसलमान भौतिक लाभ की आशा न करें।

बद्र की जंग का परिणाम कुरैशों के लिये भी अप्रत्याशित था और इस स्थिति को ठंडा करना उनके लिये अत्यंत घातक हो सकता था। अपना अस्तित्व बचाये रखने के लिये कुरैशों के लिये यह आवश्यक हो गया था कि वे तत्परता से प्रतिघात कर मदीना के मुसलमान समुदाय को नष्ट करें। न केवल पारंपरिक कुरैशों की प्रतिष्ठा दांव पर लगी थी, अपितु उनकी वाणिज्यिक जीवन रेखा का अस्तित्व भी खतरे में था। सीरिया को जाने वाला कारवां मार्ग उनके लिये इतना महत्वपूर्ण था कि वे उस मार्ग को पूर्ण रूप से नहीं छोड़ सकते थे। अत: अंतरिम उपाय के रूप में उन्होंने मेसोपोटामिया से व्यापारिक गतिविधियां बढ़ा लीं, किंतु दीर्घकालिक समाधान के लिये उन्होंने मदीना के नगर-राज्य के सम्पूर्ण विनाश के लिये बड़ी तैयारियां प्रारंभ कर दी थीं। तद्नुसार, उन्होंने अन्य जनजातियों के साथ गठबंधन कर बड़ी राशि एकत्र की और व्यय किया तथा मदीना के विरुद्ध बड़े आकम्रण की योजना बनाने में जुट गये। तैयारी हो जाने के बाद उन्होंने मुसलमानों को प्रताड़ित करने और उनके मनोबल को छिन्न-भिन्न करने के लिये मदीना के आसपड़ोस में उन पर कई आक्रमण किये।

दूसरी ओर मुसलमानों ने ठान लिया था कि वे कुरैशों को उस कारवां मार्ग का उपयोग नहीं करने देंगे। उन्होंने कुरैशों के आक्रमण का सफलतापूर्वक प्रत्युत्तर दिया और उस व्यापारिक मार्ग पर बसे लोगों को अपना सहयोगी बनाने की पूर्व की नीति को निरंतर रखा। इतना ही नहीं, उन्होंने मेसोपोटामिया जाने वाले कारवां के मार्ग को भी अवरुद्ध करने के लिये हमला करना प्रारंभ कर दिया। बनू गतफान और बनू सुलैम के अभियान का यही उद्देश्य प्रतीत होता था।

उन दिनों मदीना में तीन यहूदी जनजातियां बनू कुनैका, बनू नज़ीर और बनू क़ुरैजा रहती थीं। इन तीनों जनजातियों ने मुसलमानों के साथ सहयोग व पारस्परिक सहायता की संधि की थी। उनमें से एक बनू कुनैका ने उस समय मुसलमानों के साथ विश्वासघात किया था, जब बद्र की जंग में पवित्र रसूल उपस्थित नहीं थे और इस कारण इस जनजाति को मदीना से भगा दिया गया था।

उहुद: संकट और इसका प्रबंधन

मदीना में सदा के लिये मुसलमान समुदाय को नष्ट करने की नीति पर चलते हुए एक वर्ष पश्चात कुरैशों ने मदीना पर आक्रमण किया। यह लड़ाई उहुद की जंग में बदल गयी और मुसलमान फौज को पराजय का सामना करना पड़ा। यद्यपि कुरैश युद्ध भूमि में अपनी विजय को इतना आगे नहीं ले जा सके कि वे मुसलमानों पर अपना राजनीतिक निर्णय थोप पाते। तथापि, उहुद में जो विध्वंस हुआ उससे मुसलमानों पर इतना गंभीर संकट आया कि इससे पहले रसूल (उन पर शांति हो) के जीवन काल में उन पर ऐसी विपदा कभी नहीं आयी थी। उहुद जो कि बड़े घटनाक्रमों व निर्णयों की जंग थी, ने बहुत सी मूल्यवान सीख दी। हमारी विशेष रुचि उन कारणों में होगी, जिसके चलते यह संकट आया और जिस प्रकार से जंग के समय और जंग के बाद इसे नियंत्रित व व्यवस्थित किया गया। इस संकट का वृत्त अध्ययन इस अध्याय में आगे दिया गया है।[3] इसके मुख्य पक्षों का सारांश निम्नलिखित है:-

---

[2] देखें परिशिष्ट—II

[3] देखें परिशिष्ट—III

क) ***कुरैशों के युद्ध का लक्ष्य:*** उहुद की जंग के रूप में परिवर्तित होने वाले कुरैशों के आक्रमण का राजनीतिक लक्ष्य यह था कि मदीना के नगर-राज्य को पूर्ण विनाश कर दिया जाए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये यह आवश्यक था कि कुरैश मुसलमानों का पूर्णत: सफाया कर दें और मदीना को अपने राजनीतिक व सैन्य प्रभुत्व में लें।

ख) ***युद्धक्षेत्र का विकल्प:*** मक्का वालों की सेना आने का समाचार सुनकर मुसलमानों के बीच युद्ध-क्षेत्र के विकल्प को लेकर विचार-विमर्श होने लगा। अंसार और कुछ अन्य वरिष्ठ नगर के भीतर घेराबंदी और लड़ाई के पक्ष में थे और पवित्र रसूल भी इसी विकल्प के पक्ष में थे। दूसरा समूह चाहता था कि नगर के बाहर जंग की जाए। दूसरे समूह की इच्छा मानी गयी और यह निश्चित हुआ कि मदीना से 3 मील दूर उहुद में कुरैशों से जंग लड़ा जाए।

ग) ***यहूदियों का विश्वासघात:*** मदीना के यहूदियों के साथ यह संधि थी कि मदीना पर आक्रमण करने वाले शत्रुओं के विरुद्ध वे मुसलमानों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर लड़ेंगे, किंतु उन्होंने जंग की सुबह मुसलमानों का साथ छोड़ दिया। इससे मुसलमानों की संख्या 1000 से घटकर 700 रह गयी और उनकी वेदना और चिंता भी बहुत बढ़ गयी।

घ) ***मुसलमान जनजातियों का सुनियोजित ढंग से साथ छोड़ना:*** यहूदियों को साथ छोड़ता देख बनू सलमा व बनू हारिस के मुसलमान कबीले भी कायरता दिखाते हुए साथ छोड़ने की तैयारी करने लगे। यद्यपि पवित्र रसूल ने उन्हें मनाया तो उन्होंने यह विचार त्याग दिया।

ङ) ***तीरंदाजों की अवज्ञा:*** जंग से पूर्व पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) ने एक ऐसे टीले पर 50 तीरंदाजों के एक गिरोह को नियुक्त किया, जहां के एक उघड़े हुए किनारे से दूर तक देखा जा सकता था। उन्हें किसी भी स्थिति में वह चौकी न छोड़ने का आदेश दिया। आरंभिक हमले में कुरैशों को उखाड़ फेंकने के बाद मुसलमान लूट का माल एकत्र करने में लग गये और ये तीरंदाज रसूल के आदेश की अवहेलना करते हुए अपनी चौकी छोड़कर लूट के माल में अपना भाग लेने चले गये।

च) ***खालिद का प्रतिघात:*** कुरैश सेना के घुड़सवार दल के कमांडर खालिद बिन वलीद ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए तीरंदाजों के उस टीले पर नियंत्रण कर लिया और पीछे छूट गये मुसलमानों पर पुन: आक्रमण कर दिया, जिससे मुसलमानों में भगदड़ मच गयी। पीछे हट रहे कुरैश भी रणभूमि में लौट आये और मुसलमानों पर दो दिशाओं से वार किया। मुसलमान कुरैश सेना के इस प्रहार का सामना नहीं कर सके और भागने लगे।

छ) ***रसूल की मृत्यु के विषय में प्रवाद (अफवाह):*** कुरैशों द्वारा पुन: किये गये आक्रमण के कारण उपजे भ्रम से यह समाचार फैल गया कि इस्लाम के रसूल (उन पर शांति हो) मारे गये। यह सुनकर अधिकांश मुसलमान लड़ाके हताशा में रणभूमि से भाग गये। शत्रु के आक्रमण का मुख्य लक्ष्य पवित्र रसूल थे, यद्यपि सच यह था कि वह केवल घायल हुए थे और कुछ मुट्ठीभर अनुयायी उनकी रक्षा कर रहे थे।

ज) ***विपदा:*** उस समय मुसलमान बड़ी विपदा में थे। उनकी प्रारंभिक जीत पराजय में बदल चुकी थी। जिस लूट के माल के लालच में उन्होंने आदेश की अवज्ञा की थी, वह भी उन्हें न मिला। उनकी फौज छिन्न-भिन्न हो गयी। उनके रसूल न केवल घायल हुए, वरन् यह प्रवाद उड़ गया कि वो मारे गये। निश्चित रूप से वह दिन कुरैशों का था।

झ) ***कुरैशों का आनंद:*** कुरैश अपनी विजय का आनंद मनाने लगे और अपने शिविर समेट लिये। यह सोचकर कि शत्रु अपनी सफलता से उत्साहित होकर मदीना पर आक्रमण कर सकता है, पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) ने अपने अनुयायियों को सावधान किया कि वे आसन्न खतरे से निपटने के लिये अपने आपको तैयार रखें। यद्यपि ऐसा कुछ नहीं हुआ। कुरैशों ने अपने शिविर उखाड़े और मक्का का मार्ग पकड़ लिया।

ञ) ***हमरा अल-अस्वद पर चढ़ाई:*** पवित्र रसूल को आशंका थी कि कुरैश अगले दिन मदीना पर आक्रमण करने के लिये लौट आयेंगे। तद्नुसार, उन्होंने अगले दिन हमरा अल-अस्वद में उन्हें पकड़ा और इधर-उधर भागने पर विवश कर दिया।

ट) ***समापन:*** कुरैशों ने भले ही मुसलमानों पर बड़ी विजय प्राप्त कर ली थी, परंतु वे अपना राजनीतिक लक्ष्य प्राप्त करने में विफल रहे। वे मदीना को जीते बिना अथवा नगर में अपनी सेना लगाये बिना युद्धभूमि से चले गये। मुसलमानों ने पहले जैसा ही मदीना पर अपनी पकड़ बनाये निरंतर बनाये रखी।

उहुद की जंग अनेक मूल्यवान सीख देती है। ये सीख कुरआनी अध्याय 'आले-इमरान' में इस जंग पर अल्लाह द्वारा की गयी आलोचना में सारभूत हैं। इसका एक अंश इस पुस्तक में आगे दिया गया है।[4] ये सीख मुख्यत: जंग के आयाम व प्रकृति एवं इसके संचालन से संबंधित हैं। इस आलोचना में विस्तार से उन बातों को भी बताया गया है, जो इस जंग में मुसलमानों की पराजय के कारण बने।

सामान्यत: यह कहा जाता है कि मुसलमान इस जंग में इस कारण पराजित हुए थे, क्योंकि तीरंदाजों ने अपनी चौकी छोड़ दी थी। खालिद ने टीले पर नियंत्रण कर लिया और उनके विरुद्ध प्रबल प्रहार किया, जिससे वे बुरी प्रकार अस्त-व्यस्त हो गये। मुसलमानों के लिये और बुरी स्थिति तब हो गयी, जब मुख्य कुरैश सेना रणभूमि में लौट आयी और उन पर पुन: आक्रमण कर दिया। इससे मुसलमान दो विपरीत दिशाओं से घिर गये और उन्हें दो सीमाओं पर एक साथ लड़ना पड़ा। इस आक्रमण से मुसलमान छिन्न-भिन्न हो गये और अंतत: इसका परिणाम उनकी पराजय के रूप में सामने आया। अत: युद्ध कला के विद्यार्थी सामान्यत: इस जंग से सीख पाते हैं कि किसी सेना को सदैव अपने सैनिकों की सुरक्षा करते रहना चाहिए। पीछे से अचानक किये गये आक्रमण से विरोधी शिविर में बड़ी घबराहट फैल सकती है और फौजियों की उस इकाई को बड़ी हानि होती है जिसे दो भिन्न दिशाओं में एक साथ लड़ना पड़ता है।

उपरोक्त आशय निस्संदेह सटीक हैं, किंतु ये स्वयं में पूर्ण नहीं हैं। मुसलमानों की पराजय के वास्तविक कारण की पहचान के लिये हमें गहराई से यह जानने का प्रयास करना होगा कि तीरंदाजों ने आदेश का उल्लंघन क्यों किया और टीले को क्यों छोड़ा। यह जानने के लिये हमें बद्र की जंग को पुन: देखना होगा। वह लूट के माल का लालच था जिसके कारण उस जंग के पश्चात मुसलमान फौज में असंतोष उत्पन्न हुआ। परिणामस्वरूप, कुरआन ने जंग की लूट के माल और बंदियों के मुक्ति-धन (फिरौती) के लोभ में पड़ने को मना किया। पुन: उन्होंने उहुद में लूट के माल का भाग लेने के लिये रसूल के आदेश की अवहेलना की। इस प्रकार कुरआन ने अल्लाह के मार्ग में जंग करते समय जिस लूट के माल पर ध्यान न देने को कहा था, उस माल के लोभ से वे तब भी नहीं बच सके थे। अत: उहुद में मुसलमानों की पराजय का मूल कारण उनका भंगुर विश्वास था, न कि उघड़ा हुआ वह टीला का किनारा। इसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों की दुर्बलता सामने आ गयी।

उहुद में मुसलमानों की पराजय से पड़ोस की मूर्तिपूजक जनजातियों को लगा कि अब इस्लाम के गिने-चुने दिन बचे हैं। इस्लाम पर निर्णायक प्रहार करने की आशा में उन्होंने मुसलमानों के विरुद्ध कई संगठित आक्रमण किये। यद्यपि मुसलमानों द्वारा अपनी भूमि पर शत्रु के प्रत्येक प्रयास को नष्ट किया गया। यही नहीं, वरन् मुसलमानों ने पूर्वी कारवां मार्ग पर सफल हमले किये और इस मार्ग को कुरैशों के लिये असुरक्षित बना दिया। जत-अल-रक्का, दुमअतुल जन्दल और बनू मुस्तलिक के अभियान इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किये गये। यह ध्यान देना महत्वपूर्ण होगा कि इस अवधि में मुसलमान अपनी निष्क्रियता के आगे झुकने की अपेक्षा साहसिक व आक्रामक कार्रवाइयों से युक्तियुक्त पहल करते रहे। ग्लब कहते हैं, "शत्रुता के इन वर्षों में दोनों पक्षों के मध्य जो सर्वाधिक ध्यान देने वाला विरोधाभास था, वह यह था कि कुरैशों की निष्क्रियता के विपरीत मुसलमान अथक व आक्रामक कार्रवाई में संलग्न रहे।"

मदीना के भीतर भितरघातियों ने अपनी विध्वंसक कार्रवाइयां तेज कर दीं और अपने विषय में ऐसे प्रवाद फैलाने प्रारंभ कर दिये, जिससे मुसलमानों में हताशा व निराशा व्याप्त होने लगी। पवित्र कुरआन ने शत्रु के इस दुष्प्रसार पर ध्यान न देने को कहा। बनू नज़ीर की यहूदी जनजाति ने उहुद के युद्ध के समय मुसलमानों के साथ की गयी संधि को तोड़ दिया था और इस कारण उन्हें नगर से निष्कासित कर दिया गया था। यहूदी उत्तर की ओर बढ़े और ख़ैबर, फिदक, वादी-अल-कुरा में जाकर बस गये और वहां से मदीनावासियों के विरुद्ध सक्रियता से खेल रचने लगे। दुमअतुल जन्दल के शासक और आसपास की जनजातियों के साथ मिलकर वे मदीना और सीरिया के मध्य जाने वाले मुसलमानों के कारवां पर उपद्रव करने लगे। उन्होंने मदीना पर पुन: निर्णायक आक्रमण करने के अभियान में जुड़ने के लिये गतफान व फ़जरा की जनजातियों को उत्कोच (रिश्वत) भी दिया। यद्यपि मक्कावासियों को यह समझ आने में बहुत समय नहीं लगा कि वे मुसलमानों पर राजनीतिक निर्णय थोपने के लिये उहुद की अपनी सैन्य विजय को आगे बढ़ा पाने में विफल रहे थे। वे यह जानकर अचंभित हुए कि मदीना में मुसलमान समुदाय अभी भी अक्षत है और नगर पर अधिकांशत: अभी भी उनका ही नियंत्रण है। इससे कुपित व क्षुब्ध होकर उन्होंने मदीना पर आक्रमण के लिये बड़ी सेना तैयार करने का प्रयास करना प्रारंभ कर दिया। सौभाग्य से उस समय उन्हें गतफान व यहूदियों जैसे इच्छुक व शक्तिशाली सहयोगी भी मिल गये। मदीना की घेराबंदी की पूरी तैयारी हो गयी।

---

[4] देखें परिशिष्ट—IV

मदीना की घेराबंदी

मदीना की घेराबंदी कुरैशों द्वारा मुसलमानों को नष्ट करने की अंतिम व सबसे समर्थ प्रयास था। अपप्रचार, पारंपरिक कुरैश प्रतिष्ठा, माल का लालच, उत्कोच सहित विभिन्न साधनों का प्रयोग करते हुए मक्कावासी मदीना के उत्तर व पूर्व में स्थित जनजातियों को मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध के लिये तैयार करने में सफल रहे।

31 मार्च 627 ईस्वी को दस हजार व्यक्तियों की क्षमता वाले इस महागठबंधन ने मदीना पर तीन दिशाओं से आक्रमण किया। बनू हुज़ैल व बनू जमरा द्वारा समर्थित कुरैशों ने दक्षिण दिशा से धावा बोला। गतफान, मर्रा, अशजा और फज़रा की जनजातियों ने पूर्वी छोर से मदीना को घेर लिया, जबकि ख़ैबर, कुर्रा व फिदक के यहूदी उत्तर की ओर से टूट पड़े। इस घेराबंदी में एक और विकट स्थिति यह आ गयी कि मुसलमानों के सहयोगी मदीना के बनू क़ुरैजा के यहूदी विद्रोही हो गये और वे मुसलमानों के साथ की गयी संधि तोड़कर कुरैशों की ओर से युद्ध में सक्रिय हो गये। इससे मुसलमानों के लिये अत्यंत खतरनाक स्थिति बन गयी। बनू क़ुरैजा की अवस्थिति ऐसी थी कि वे मदीना नगर पर सीधे आक्रमण कर सकते थे और मुसलमानों की पीठ में छुरा घोंप सकते थे।

मुसलमान इस महासंघ के विरुद्ध लड़ने के लिये केवल 3000 व्यक्ति ही जुटा सके। पारसी से मुसलमान बने सुलेमान फारसी के परामर्श पर पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) ने उस ओर खंदक खुदवायी जिधर मदीना खुला था और घुड़सवारों द्वारा आक्रमण किया जा सकता था। खंदक के एक छोर से दूसरे छोर तक उपयुक्त स्थानों पर निगरानी के लिये तीरंदाज लगा दिये गये, जिससे कि खंदक को पार करने के कुरैशों को किसी भी प्रयास को विफल किया जा सके।

कुरैशों ने सैन्य, आर्थिक व मनोवैज्ञानिक तीनों स्तर पर एकसाथ युद्ध लड़ा। सैन्य स्तर पर खंदक को पार करने का उनका प्रयास सफलतापूर्वक विफल कर दिया गया, किंतु अन्य दो स्तरों पर युद्ध में वे आगे थे। घेराबंदी लंबी खिंचने के साथ ही मुसलमानों के लिये आर्थिक कठिनाइयां इतनी बढ़ गयीं कि वे लगभग टूटने की स्थिति में आ गये थे। बनू क़ुरैज़ा के दलबदल से मुसलमानों पर मनोवैज्ञानिक दबाव भी अधिक बढ़ गया, यद्यपि उनके द्वारा नगर पर आक्रमण करने के एक प्रयास को विफल कर दिया गया। एक स्तर पर पवित्र रसूल ने अंसारों को सुझाव दिया कि मुसलमान मूर्तिपूजकों में सबसे सुदृढ़ गतफान के साथ शांति संधि कर लें, भले ही यह संधि हानिप्रद अनुबंधों के साथ क्यों न हो। किंतु इस मत से सहमत न होकर अंसारों ने उनसे कहा कि कृपया उनके लिये, ऐसा न करें।

उन्होंने पूर्ण आत्मविश्वास दोहराया और अंत तक जंग लड़ने का संकल्प लिया।

अंसारों के दृढ़निश्चय के बाद भी स्थिति ऐसी बन गयी थी कि जंग का अति शीघ्र समाप्त होना ही श्रेयस्कर था। ऐसा करने के लिये पवित्र रसूल ने (उन पर शांति हो) उस महीन व भंगुर 'धागे' पर मनोवैज्ञानिक प्रहार करने का निर्णय किया, जिससे ये गठबंधन तैयार हुआ था। इसके लिये उन्होंने बनू गतफान के एक नये धर्मांतरित की सहायता ली। गतफान जनजाति के लोगों इस व्यक्ति के धर्मांतरण की जानकारी नहीं थी। एक ओर बनू क़ुरैज़ा के बीच पारस्परिक अविश्वास और संदेह को हवा दी गयी और दूसरी ओर कुरैश व गतफान के बीच भी अविश्वास उत्पन्न किया गया। इतनी विशाल सेना के लिये भोजन-पानी जुटाने की कठिनाई और लंबी घेराबंदी से उपजी निराशा के साथ कष्टप्रद झंझावात ने आग में घी का काम किया। शत्रु पक्ष में पारस्परिक अविश्वास की खायी इतनी बढ़ गयी कि बनू कुरैश और बनू गतफान दोनों घेराबंदी समाप्त कर हट जाने को विवश हो गये। कुल मिलाकर मुसलमान अपनी संख्या में अनेक शत्रुओं पर रक्तहीन विजय प्राप्त करने में सफल हो गये।[5]

हुदैबिया और मक्का

खंदक के एक वर्ष पश्चात, पवित्र रसूल ने 1400 मुसलमानों के नि:शस्त्र जत्थे के साथ मक्का की तीर्थयात्रा पर जाने का निर्णय किया। अरब की सदियों प्राचीन परंपरा के अनुसार इन पवित्र माह में लड़ाई प्रतिबंधित थी और उस पवित्र मस्जिद (मंदिर) में जाने से किसी को रोका नहीं जा सकता था। यद्यपि युद्ध परिषद की बैठक में कुरैशों ने मक्का में मुसलमानों को प्रवेश न देने का निर्णय किया और नगर से 8 मील दूर

[5] खंदक के आसमानी विश्लेषण के लिये देखें परिशिष्ट—IV

स्थित हुदैबिया में उन्हें रोक दिया। मक्कावासियों के युद्ध जैसे षडयंत्र को भांपकर पवित्र रसूल ने अपने निहत्थे सहचरों से पुन: प्रतिज्ञा ली कि वे मृत्यु तक शत्रु से लड़ेंगे। पवित्र कुरआन इस प्रतिज्ञा को अल्लाह की प्रसन्नता की प्रतिज्ञा कहती है।

हुदैबिया में हुआ यह आमना-सामना अंतत: मुसलमानों व कुरैशों के मध्य शांति की संधि के रूप आया।

इसमें महत्वपूर्ण उपबंध थे। पहला यह था कि मुसलमानों और कुरैशों के मध्य दस वर्ष की संधि हो। दूसरा यह था कि उस वर्ष मुसलमान तीर्थयात्रा किये बिना मदीना वापस लौट जाएं, यद्यपि अगले वर्ष वे तीर्थयात्रा के लिये वहां आ सकते थे। तीसरा यह था कि जो मक्कावासी दल बदल कर मुसलमानों की ओर चले गये थे, उन्हें कुरैशों को वापस किया जाए। चौथा उपबंध यह था कि जो मुसलमान मक्का आया हो और कुरैशों द्वारा पकड़ लिया गया हो, उसे वापस न किया जाए। अंतिम तीन उपबंधों से मुसलमानों को घोर निराशा हुई और अधिकांश मुसलमानों ने इस संधि को असमान व अनुचित माना। जब उनके रसूल में हुदैबिया में तीर्थयात्रा की रीतियां पूरी करने और मदीना लौट चलने के लिये कहा तो उन्होंने अपना क्षोभ व क्रोध प्रकट किया।

कुरैशों ने इस संधि को अपनी बड़ी विजय बतायी। दूसरी ओर पवित्र कुरआन ने इसे मुसलमानों की प्रत्यक्ष विजय बताया। इस संधि का पूरा प्रभाव बाद में सामने आया।

इस संधि से कुरैशों को अपना सम्मान बचाने और मक्का व सीरिया के मध्य कारवां का उपयोग करने की अनुमति के अतिरिक्त कुछ न मिला, जबकि इससे मुसलमानों को अनेक प्रकार के लाभ हुए। मुसलमानों को प्रथम लाभ यह हुआ कि कुरैशों ने उन्हें अरब में राजनीतिक सत्ता चलाने में समान साझेदार के रूप में स्वीकार कर लिया। दूसरा यह कि मुसलमानों ने अपने लिये आने वाले वर्ष में तीर्थयात्रा का अधिकार सुनिश्चित कर लिया। तीसरा पवित्र रसूल को मक्का के आसपास घुमंतू जनजातियों को इस्लाम का उपदेश देने का अवसर मिला। परिणामस्वरूप, इन जनजातियों ने नया धर्म इस्लाम स्वीकार किया, जिससे मक्का के लोग निराश, मित्रहीन हो गये और अकेले पड़ गये। चौथा कुरैशों के दलबदलू जो मुसलमानों से अत्यंत प्रभावित थे, उनकी वापसी और कुरैशों द्वारा पकड़े गये मुसलमानों की वापसी नहीं होने से मक्का के भीतर मुसलमानों अथवा मुसलमानों से सहानुभूति रखने वालों का एक वर्ग तैयार हो गया। अंतत: इससे मुसलमानों को उत्तरी अरब के ख़ैबर व जर्रा में शत्रु यहूदियों जनजातियों से निपटने के लिये समय मिल गया।[6] दो वर्ष पश्चात मक्कावासियों ने स्वयं पहल करके इस संधि को समाप्त कर दिया। परिणामस्वरूप, मुसलमानों ने उनके विरुद्ध एक और रक्तहीन धावा बोला और तत्पश्चात मक्का पर अधिकार कर लिया गया। मक्कावासियों पर पवित्र रसूल के व्यवहार पर विमर्श करते हुए ग्लब जैसे आलोचक स्वीकार करते हैं कि विजेता मुहम्मद प्रतिशोधात्मक नहीं थे। सामान्य क्षमादान की घोषणा की गयी और सभी शत्रु को क्षमा करते हुए छोड़ दिया गया।

हुनैन और तबूक

हुनैन की जंग ने अरब के मूर्तिपूजक बलों पर वेदनादायी प्रहार किया और वह भी मुसलमानों के लिये किसी प्रकार की गंभीर चिंता या दुख का क्षण लाये बिना। पवित्र रसूल के जीवन में यह पहला अवसर था, जब मुसलमान संख्या में अपने शत्रु से भारी थे। इस श्रेष्ठता ने उन्हें अति-आत्मविश्वासी और असावधान बना दिया। जब वे बनू हवाजिन के पहाड़ी क्षेत्रों में आगे बढ़ रहे थे, तो उन्होंने अपने फौजियों की सुरक्षा पर ध्यान नहीं दिया। जैसे ही वे हुनैन की पतली व संकुचित घाटी से निकल रहे थे, बनू हवाजिन जनजाति ने चारों ओर से उन पर आक्रमण कर दिया। शत्रु का यह औचक आक्रमण इतना प्रबल था कि मुसलमान अग्र दल भयभीत होकर भाग खड़ा हुआ और शेष फौज भी ने भी यही किया। अपने मुट्ठीभर साथियों के साथ पवित्र रसूल डटे रहे और अपने आदमियों को पुकारा कि वे उनके पास आयें। एक समय तो वहां का दृश्य उहुद जैसा दिखने लगा, किंतु शीघ्र ही स्थिति नियंत्रण में लायी गयी और मुसलमानों ने अंतत: बड़ी जीत प्राप्त की।

जैसा कि पहले कहा गया है कि उत्तरी अरब को अपने अधीन करने से मुसलमानों का रोमन सीरिया से सम्पर्क हुआ। बैजन्टाइन सम्राट हरकुलिस उस समय सीरिया में उपस्थित था। हरकुलिस अपनी शक्ति दिखाने के लिये अपने व्यक्तिगत कमांड में बड़ी सेना एकत्र की और तबूक की ओर बढ़ा। पवित्र रसूल ने इस रोमन खतरे पर विद्युत गति से प्रतिक्रिया दी। 30 हजार मुसलमानों की फौज लेकर वो स्वयं तबूक की ओर

---

[6] हुदैबिया पर आसमानी निर्णय के लिये देखें परिशिष्ट– VI

बढ़े। रसूल के जीवन में यह सबसे बड़ी फौज़ थी, जिसका उन्होंने नेतृत्व किया था। मुसलमानों की प्रतिक्रिया देखकर भयभीत रोमन मुसलमान फौज पहुंचने से पूर्व ही तितर-बितर हो गये।[7]

निष्कर्ष

पवित्र कुरआन में उल्लिखित उन फौजी अभियान और जंगों से कहीं अधिक पवित्र रसूल का मूर्तिपूजकों के विरुद्ध अभियान अल्लाह के उस संदेश का अभिन्न व मुख्य भाग हैं। इसके अतिरिक्त वे सर्व-सामर्थ्यवान अल्लाह द्वारा हमारे लिये निर्धारित जंग की कला के अनुप्रयोग को सीखने की संस्था हैं। पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) द्वारा अपनी योजनाओं व संचालन में प्रदर्शित सुंदर प्रारूप पर मंथन के लिये इनमें से प्रत्येक अभियान के विस्तृत व अनन्य अनुसंधान की आवश्यकता है। वैसे इस अध्ययन के उद्देश्य से उपरोक्त वर्णित अभियानों के मुख्य पक्षों पर ही हम ध्यान केंद्रित करेंगे जिससे कि कुरआनी फौजी विचार के अनुप्रयोग के नियत पक्षों को समझ सकें।

मदीना प्रवास एवं अपने राज्य की घोषणा के तुरंत पश्चात मुसलमानों को सताने वालों के विरुद्ध हथियार उठाने का आदेश दिया गया। यह वो राज्य था, जो स्वयं में इतना छोटा था कि माइक्रोस्कोप से ढूंढ़ना पड़ता, फिर भी इस राज्य का आह्वान किया गया कि वह कुरैशों व अन्य शत्रु अरबी जनजातियों के पराक्रम का सामना करे। उस निर्णायक समय पर इस्लाम के रसूल (उन पर शांति हो) ने अपने शत्रु को पहचानने एवं उनके विरुद्ध अपनी रणनीति बनाने में असाधारण गंभीरता व दृष्टि दर्शायी। मुख्य शत्रु मक्का के कुरैश थे और उनके विरुद्ध अपनायी गयी रणनीति इस पर केंद्रित थी कि सीरिया जाने वाले उनके व्यापारिक मार्ग को ध्वस्त कर दिया जाए। इस रणनीति को व्यवहार में लाने में मात्र कुछ हमलों और कूटनीतिक अभियानों की आवश्यकता पड़ी और इनमें से अधिकांश रक्तहीन थीं। इसने मक्कावासियों को कारवां मार्ग का उपयोग करने से रोक दिया और एक समुदाय के रूप में उन्हें झिंझोड़ दिया। युद्ध के इतिहास इससे पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था कि थोड़े प्रयासों से ही इतना अधिक लाभ मिल जाए और इससे पूर्व ऐसा प्रयास कभी किया भी नहीं गया था।

जो जंग योजना रसूल ने बनायी और जो जंग किये, वो विशाल स्तर पर सम्पूर्ण थे। ये सभी ओर यथा: आंतरिक व वाह्य, राजनीतिक व कूटनयिक, मजहबी व मनोवैज्ञानिक, आर्थिक व फौजी सभी स्तरों पर किये गये। इसमें एक ऐसी आदर्श स्थिति थी, जिसमें सम्पूर्ण रणनीति अर्थात 'जिहाद' के अभिन्न घटक के रूप में फौजी रणनीति को व्यवहार में आने से अद्भुत परिणाम आये। अपनी पूरी सामर्थ्य के प्रयोग के सद्गुण से मुसलमानों को जंग प्रारंभ करने के केवल पांच वर्ष के भीतर ही शत्रु के पलड़े को पलट देने में सफलता मिली।

आरंभ से ही मक्कावासियों ने मुसलमानों के विरुद्ध रणनीतिक रूप से आक्रामक व्यवहार अपना रखा था, पर मुसलमानों ने युक्तियुक्त स्तर पर अपनी चतुर पहल सदा बनाये रखी। बद्र के पश्चात सीरिया को जाने वाला कारवां मार्ग मक्कावासियों के लिये पूर्णत: बंद हो चुका था और इसे पुन: खोलने का उनके सभी प्रयास विफल हो चुके थे। बद्र की महत्वपूर्ण विजय के पश्चात मुसलमानों को उहुद की पराजय का स्वाद चखना पड़ा और इसके परिणामस्वरूप मूर्तिपूजकों, यहूदियों व भितरघातियों की ओर से नये सिरे से शत्रुता बढ़ गयी थी। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिये इस्लाम के रसूल (उन पर शांति हो) ने अपनी चतुराई भरी गतिविधियां कई गुना बढ़ा दीं। आक्रमणकर्ताओं से उनकी ही भूमि पर सामना किया गया और वहीं उनको नष्ट किया गया। वास्तव में इस अवधि में ही पूर्वी कारवां मार्ग पर हमला किया गया और इसे मूर्तिपूजकों के लिये असुरक्षित बना दिया गया।

तब हम इस्लाम के रसूल (उन पर शांति हो) को खंदक में देखते हैं, जहां वो भीतर और बाहर दोनों स्थानों पर अनेक शत्रुओं से घिरे हुए थे। जंग का विद्यार्थी अचंभित होता होगा कि उन्होंने उन परिस्थितियों में भी कैसे इतनी बड़ी जीत प्राप्त की! मुसलमानों को मिटाने के लिये शत्रुओं द्वारा गठित महागठबंधन के उस मनोवैज्ञानिक तार को खंडित करके उन्होंने ऐसा किया। इसी मनोवैज्ञानिक अपनत्व अर्थात तार के कारण शत्रु मुसलमानों को मिटाने के लिये एकसाथ आये थे। यह तार प्रारंभ से ही अपनी अवधारणा व प्रकृति में भंगुर था। इसके पश्चात हुदैबिया की संधि हुई, जिसका पूरा प्रभाव तो मुसलमान भी प्रारंभिक चरणों पर नहीं समझ पाये थे। इससे मुसलमानों को उत्तरी अरब की शत्रु जनजातियों से निपटने का समय मिला।

---

[7] तबूक पर पवित्र कुरआन के लिये परिशिष्ट—VII देखें।

इस संधि से मक्कावासी पड़ोसी जनजातियों से दूर हो गये और इसके परिणामस्वरूप विशेष प्रतिरोध के बिना ही मक्का नगर पर अधिकार कर लिया गया।

पवित्र रसूल की रणनीति पर विचार करते हुए मुहम्मद हमीदुल्लाह लिखते हैं, "वास्तव में रसूल मुहम्मद ने सदा एक सामान्य नीति के रूप में और एक सिद्धांत के बिंदु के रूप में भी, शत्रु पर प्रभावी होने को प्राथमिकता दी, न कि उसे मिटाने की। इसके लिये दो प्रकार के साधन थे: एक तो यह था कि कुरैशों को चिंता में डालने वाला आर्थिक दबाव निर्मित किया जाए और दूसरा यह कि दीर्घ-कालिक नीति के साथ निरंतर अपनी फौजी ताकत बढ़ायी जाए। उन्होंने ऐसे सटीक समय पर हमला किया, जब शत्रु कोई प्रतिरोध करने का साहस न कर सके और अपना उद्देश्य रक्तहीन ढंग से पूरा किया जा सके। यदि शत्रु के अक्षत संसाधन व ऊर्जा को और अच्छे व रचनात्तमक चैनल में पुनर्निर्देशित किया जाए, तो ये इस्लामिक राज्य की ताकत बढ़ा सकती हैं। यदि रक्तहीनता, राष्ट्रीय सत्ता के सभी तत्वों की पहचान व अनुप्रयोग, जंग के गुरुत्व केंद्र को ढूंढ़ना और जीतना तथा फौजी उपकरणों का प्रभावकारी प्रयोग करना सम्पूर्ण रणनीति का सूचक है, तो मूर्तिपूजकों के विरुद्ध पवित्र रसूल का जंग इसका सबसे चमकता उदाहरण है।

इन अभियानों से हम यह भी सीखते हैं कि जिस फौज का विश्वास अटल रहता है, उस पर भौतिक या मनोवैज्ञानिक दबाव का कोई अंश काम नहीं करता। इसके विपरीत अस्थिर विश्वास के साथ शत्रु पर की गयी छोटी सी मनोवैज्ञानिक 'चालबाजी' भी स्वयं ही पराजय को आमंत्रित करने वाली हो सकती है। मुसलमान फौज में मजहबी अविश्वास की विश्वासघाती दुर्बलता मनोवैज्ञानिक आक्रमण होने पर निर्बल बना सकती है। जब पूरी फौज भयग्रस्त हो जाती है, तो कुछ समर्पित आत्माओं की दृढ़ता विपत्ति को रोक सकती है और इसे विजय में परिवर्तित कर सकती है। इन अभियानों की सबसे बड़ी सीख यह है कि अभियान चाहे व्यक्तिगत रूप से प्रारंभ किये गये हों अथवा सामूहिक रूप से, परिणाम प्राप्त करने के लिये जंग के कुरआनी सिद्धांत पूर्ण व समग्र रूप से व्यवहार में लाये जाने योग्य होती हैं। इसे केवल कुछ टुकड़ों में प्रयोग नहीं किया जा सकता।

MILITARY OPERATIONS: 625_632 AD

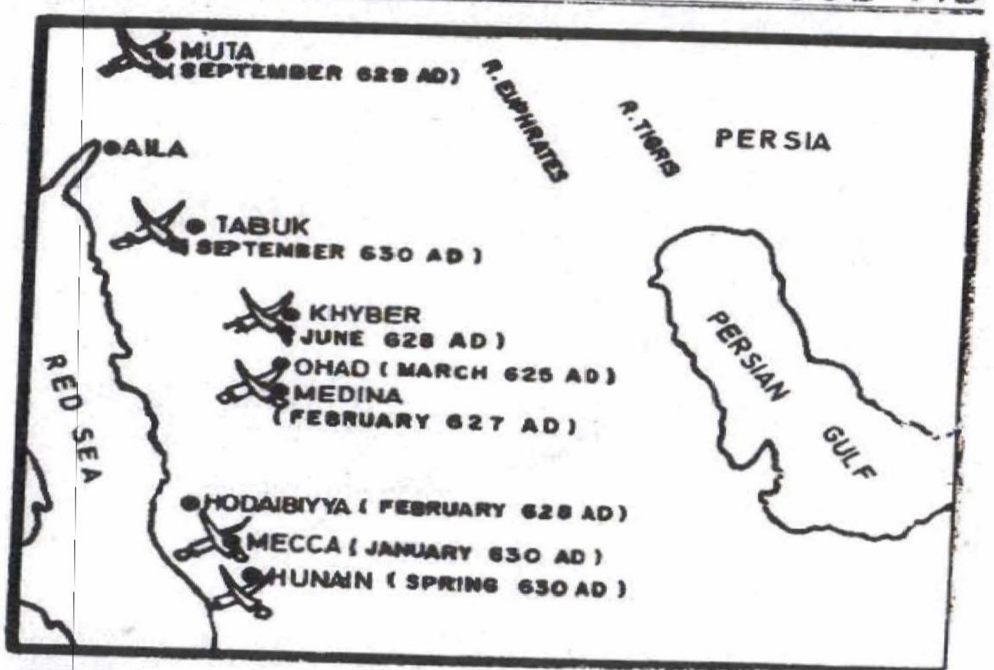

NOT TO SCALE

परिशिष्ट

परिशिष्ट—1

पवित्र रसूल के फौजी अभियान

क्रमांक	अभियान	टिप्पणियां
1.	**बद्र से पूर्व के हमले व मेल-जोल अभियान** क) सरिय्या सैफुल बहर ख) सरिय्या राबिग़ ग) सरिय्या जर्रार घ) गज़वा वद्दन/अब्वा ङ) गज़वा बुवात च) गज़वा सफ्वान छ) गज़वा जुल अशिर ज) सरिय्या नखला	ये अभियान रमजान 1 एच से रजब 2 एच की अवधि के हैं। इनमें कुछ हमले/मेलजोल/अभियान कारवां मार्ग पर सतत् निगरानी रखने के लिये चलाये गये थे। शेष पड़ोसी जनजातियों से मित्रता/तटस्थता की संधि करने के लिये किये गये थे। इन हमलों से एक मदीना से 400 मील दूर ताइफ और मक्का के बीच नखला नामक स्थान पर किया गया था। साफ्वान में किया गया हमला प्रत्युत्तर प्रकृति का था। ये सारे अभियान केवल मुहाजिरों के सहयोग से चलाये गये और लगभग सभी रक्तहीन थे।
2.	**बद्र और उहुद के बीच अभियान** क) गजवा बद्र ख) सरिय्या उमैर बिन अदी ग) सरिय्या आलम बिन उमैर घ) गजवा बनू कुनैका ङ) गजवा सवीक च) गजवा बनू सुलैम छ) सरिय्या बनू सुलैम ज) सरिय्या मुहम्मद बिन झ) गजवा गतफान ञ) सरिय्या कदा ट) गजवा उहुद	ये अभियान रमजान 2 एच से शवाल 3 एएच तक के हैं। यह समय स्मरणीय बद्र की विजय के साथ प्रारंभ हुआ, किंतु उहुद की पराजय के साथ यह समाप्त हुआ। अंसारों ने इन जंगों में बढ़चढ़ कर भाग लिया। बनू सुलैम और बनू सवीक़ की जंग प्रत्युत्तर प्रकृति के थे। बद्र की जंग के समय विश्वासघात करने वाले मदीना के यहूदियों की तीन शाखाओं में से एक बनू कुनैका को नगर से भगा दिया गया। (अन्य दो शाखाओं बनू नजीर और बनू कुरैजा के विषय में हम आगे जानेंगे)। बद्र में कुरैशों की पराजय से वे भविष्य में कारवां मार्ग का उपयोग करने से रोक दिये गये। इनमें से कई जंग दो व्यक्तियों अथवा समूहों में आमने-सामने लड़े गये, जबकि अन्य सेना के प्रदर्शन के रूप में खड़े रहे अथवा यह उन मक्कावालों द्वारा सामर्थ्य का परीक्षण था जिन्होंने पड़ोसी जनजातियों के साथ गठबंधन किया था और मक्का पर आक्रमण करने की योजना बना रहे थे।
3.	**उहुद और खंदक के बीच** क) गजवा हमर-अल-अस्वद ख) सरिय्या कुतन ग) सरिय्या अब्दुल्लाह बिन उवैस घ) सरिय्या राजी ङ) सरिय्या बीरे मोउना च) सरिय्या उमरू बिन उमैया छ) गजवा बनू नजीर	ये अभियान शव्वाल 3 एएच से जिल्काद 5 एएच तक चले। इस अवधि में मुसलमानों ने उहुद में अपनी पराजय से उबरकर खंदक की बड़ी और लगभग रक्तहीन विजय प्राप्त की। यद्यपि इस विजय का पथ अत्यंत कठिन व खतरों से भरा था। उहुद की पराजय के पश्चात उनके शत्रुओं ने निष्कर्ष निकाला कि इस्लाम के गिने-चुने दिन बचे हैं। तद्नुसार शत्रु ने मदीना आक्रमणों की श्रृंखला की योजना तैयार की। किंतु प्रत्येक प्रकरण में शत्रु का जमाव उनकी ही भूमि पर साहसी और आक्रामक हमला करके या तो तितर-बितर कर दिया गया, अथवा नष्ट कर दिया गया। बनू नजीर के यहूदी समुदाय ने मुसलमानों के साथ संधि तोड़ दी थी तो उन्हें मदीना नगर से निष्काषित कर दिया गया। हमरा-अल-अस्वद की जंग का विशेष पक्ष यह है कि यह उहुद की जंग के पश्चात स्वयं पवित्र रसूल द्वारा इसलिये लड़ी गयी थी, जिससे कि अबू सुफ्यान को मदीना पर

	ज) गजवा बद्र (अंतिम) झ) गजवा दुमअतुल जन्दल ञ) गजवा बनू मुस्तलिक ट) गजवा खंदक	आक्रमण करने के लिये लौटने से रोका जा सके। साथ ही जैसा कि उहुद की जंग के पश्चात अबू सुफ्यान को दिये गये वचन के अनुसार एक वर्ष बाद बद्र की ओर अभियान प्रारंभ किया गया, लेकिन कुरैश लड़ने ही नहीं आये। खंदक की जंग से मदीना पर आगे कभी आक्रमण करने की कुरैशों की पहल पर रोक लग गयी।
4.	**खंदक और खैबर के बीच** क) सरिय्या अब्दुल्ला बिन अतीक ख) गजवा बनू कुरैजा ग) सरिय्या कुरैजा घ) गजवा बनू लिह्यान ङ) गजवा कर्दी च) सरिय्या मरज़क़ छ) सरिय्या ज़ुल क़ुत्सा ज) सरिय्या बनू सलहा झ) सरिय्या यामून ञ) सरिय्या तारफ ट) सरिय्या वादी कतरा ठ) सरिय्या दुमअतुल जन्दल ड) सरिय्या फिदक ढ) सरिय्या कर्दा ण) सरिय्या अब्दुल्लाह बिन रवाहा त) सरिय्या गरीतिसीन थ) सरिय्या उमरू . द) गजवा हुदैबिया ध) गजवा खैबर	ये अभियान जिल्काद 5 एच से मुहर्रम 7एएच तक की अवधि के हैं। इस अवधि में पड़ोसी मूर्तिपूजक जनजातियों और उत्तरी अरब के यहूदियों ने मदीना अनेक सफल धावा बोला। खंदक के बाद के दिनों में मदीना की अंतिम यहूदी जनजाति बनू कुरैजा को ऐसा मिटा दिया गया कि एक-एक व्यक्ति समाप्त हो गये। इस जनजाति ने शत्रु के साथ हाथ मिला लिया था। बद्र के पश्चात कुरैशों ने सीरिया से अपने व्यापार के लिये कारवां का मार्ग नेज्द की ओर से परिवर्तित कर लिया था। मुसलमानों ने कारवां के इस मार्ग पर भी हमला बोला। इस अवधि की सबसे महत्वपूर्ण घटना हुदैबिया की संधि थे। इस संधि के अनुसार मक्कावासियों और मुसलमानों के बीच एक-दूसरे से शांति का समझौता हुआ। बाद में कुरैशों ने इस संधि को भंग कर दिया और इसका परिणाम यह हुआ कि दो वर्ष पश्चात मुसलमानों ने मक्का पर हमला करके उसे जीत लिया।
5.	**खैबर और मक्का के बीच** क) गज़वा वादी कुरा ख) गज़वा जत-अल-रक्का ग) सरिय्या ईस घ) सरिय्या क़दीद ङ) सरिय्या फिदक च) सरिय्या हाशमी छ) सरिय्या तरया ज) सरिय्या बनू क़लाब झ) सरिय्या मनकी ञ) सरिय्या खरबा	ये अभियान मुहर्रम 7एएच से रमजान 8एएच की अवधि के बीच के हैं। इस अवधि की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना मक्का की रक्तहीन विजय थी। मक्का पर मुसलमानों का हमला मक्कावासियों द्वारा हुदैबिया की संधि को तोड़ने के पश्चात हुआ। यह हमला हुदैबिया की संधि किये जाने के लगभग दो वर्ष पश्चात किया गया था। यद्यपि इस बीच मुसलमानों को उत्तरी अरब के यहूदियों से निपटने एवं मक्का के चारों ओर बसी जनजातियों अपना प्रभाव बढ़ाने का समय मिल गया था।

	ट) सरिय्या बनू मर्राह ठ) सरिय्या बशीर बिन साद ड) सरिय्या इब्न अबी अवया ढ) सरिय्या ज़ात अतलह ण) सरिय्या ज़ात अरक़ त) सरिय्या मुतआह थ) सरिय्या ज़ात-उस-सलासिल द) सरिय्या सैफ़ुल बहर-II ध) सरिय्या मुहर्रब न) गज़वा मक्का	
6.	**मक्का और दूमा के मध्य** क) सरिय्या खालिद बिन वलीद (I) ख) सरिय्या उमरू ग) सरिय्या साद घ) सरिय्या खालिद बिन वलीद (II) ङ) ग़जवा हुनैन च) सरिय्या उयैना बिन हिस्न छ) सरिय्या कुतबा बिन अरोएर ज) सरिय्या ज़हक बिन सुफ्यान झ) सरिय्या अब्दुल्लाह बिन खदफा ञ) सरिय्या बनू तायी ट) गज़वा तबूक ठ) सरिय्या दुमअतुल जन्दल	ये अभियान अंतिम चरण में हुए थे। ये रमजान 8 एएच से रबी-उल-अव्वल 9एएच की अवधि में हुए। इस अवधि के समाप्त होने के साथ ही पूरा अरब प्रायद्वीप इस्लाम के रसूल (उन पर शांति हो) के सांसारिक व मजहबी दोनों प्रकार के प्रभुत्व में आ चुका था। इस अवधि में मुसलमान अरब और रोमन सीरिया के मध्य मुता और तबूक की जंग में एक-दूसरे से आरंभिक जोरआजमाइश हो चुकी थी। मक्का के समीप लड़ी गयी हुनैन की जंग में मुसलमानों को आरंभिक हानि हुई, यद्यपि शीघ्र ही वे इससे उबर गये और अंतत: सफल रहे।

परिशिष्ट II

बद्र पर पवित्र क़ुरआन

1. मदीना से मुसलमानों के चलने का वर्णन

जिस प्रकार तुम्हें तुम्हारे अल्लाह ने तुम्हारे घर (मदीना) से निकाला, जबकि मोमिनों का एक समुदाय इससे अप्रसन्न था। वे आपसे जंग के विषय में झगड़ रहे थे, जबकि वह उजागर हो गया था, (कि जंग होना है)। उनकी ऐसी स्थिति हो गयी थी, मानों वे मृत्यु की ओर हाँके जा रहे हों और वे उसे देख रहे हों।

अन्फाल: 5-6

2. 'जंग के पीछे अल्लाह का उद्देश्य'

उस समय का स्मरण करो, जब तुम (जंग के मैदान में) इस ओर तथा वे (शत्रु) उस ओर थे और कारवां तुमसे नीचे था। यदि तुम आपस में (जंग का) निश्चय करते, तो निश्चित समय पर अवश्य पीछे हट जाते। परन्तु अल्लाह ने (दोनों को भिड़ा दिया) जिससे कि जो होना था, उसका निर्णय कर दे, जिससे कि जो मरे वह खुले प्रमाण के पश्चात मरे और जो जीवित रहे वह खुले प्रमाण के साथ जीवित रहे और वस्तुतः अल्लाह सबकुछ जानने-सुनने वाला है।

अन्फाल: 42

वह समय स्मरण करो, जब अल्लाह तुम्हें वचन दे रहा था कि दो दलों में एक तुम्हारे हाथ आयेगा और तुम चाहते थे कि निर्बल दल तुम्हारे हाथ लगे। परन्तु अल्लाह चाहता था कि अपने वचन द्वारा सत्य को सिध्द कर दे और काफ़िरों की जड़ काट दे। इस प्रकार सत्य को सत्य और असत्य को असत्य कर दे। भले ही अपराधबोध से ग्रस्त मोमिनों को बुरा लगता।

अन्फाल: 7-8

3. समझौता तोड़ने वालों के लिये क्या नीति हो, उसकी रूपरेखा

ये वे लोग हैं, जिनसे तुमने संधि की। फिर वे प्रत्येक अवसर पर अपना वचन भंग कर देते हैं और अल्लाह से नहीं डरते। तो यदि ऐसे लोग तुम्हें रणक्षेत्र में मिल जाएं, तो उन्हें शिक्षाप्रद दण्ड दें, जिससे कि जो उनके पीछे हैं, उनको सीख मिले।

और यदि तुमको किसी जाति की ओर से संधि भंग करने का भय हो, तो बराबरी के आधार पर संधि तोड़ दो। क्योंकि अल्लाह विश्वासघातियों से प्रेम नहीं करता। अन्फाल: 56-58

4. 'जंग के समय मुसलमानों के आचरण' पर

हे मोमिनो! जब किसी दल से भिड़ो, तो जम जाओ तथा अल्लाह का बहुत स्मरण करो, जिससे कि तुम सफल रहो। अल्लाह और उसके रसूल के आज्ञाकारी रहो और आपस में विवाद न करो, अन्यथा तुम दुर्बल हो जाओगे और तुम्हारे पांव उखड़ जाएंगे तथा धैर्य से काम लो, वास्तव में, अल्लाह धैर्यवानों के साथ है।

अन्फाल: 45-46

5. **'अल्लाह की इच्छा और उसका प्रभाव'**

हे नबी! वो समय स्मरण करो, जब तुम्हें अल्लाह सपने में, उन्हें (शत्रु को) थोड़ा दिखा रहा था और यदि उन्हें तुमको अधिक दिखा देता, तो तुम साहस खो देते और इस जंग के विषय में आपस में झगड़ने लगते। परन्तु अल्लाह ने तुम्हें बचा लिया। वास्तव में वह सभी के अन्तरमन की बातों से भली-भांति अवगत है।

स्मरण करो उस समय को, जब अल्लाह शत्रु को लड़ाई के समय तुम्हारी आंखों में तुम्हारे लिए थोड़ा करके दिखा रहा था और इनकी आंखों में तुम्हें थोड़ा करके दिखा रहा था, जिससे कि जो होना था, अल्लाह उसका निर्णय कर दे। सभी निर्णय अल्लाह द्वारा ही किये जाते हैं।

अन्फाल: 43-44

6. **'जंग की रणनीति' पर**

जो काफ़िर हो गये, वे कदापि ये न समझें कि हमसे आगे हो जाएंगे। निश्चित ही वे हमें विवश नहीं कर सकेंगे। तुमसे जितनी हो सके, उनके लिए सामर्थ्य तथा सीमा में रक्षा के लिए घोड़े तैयार रखो, जिससे कि अल्लाह के शत्रुओं तथा अपने शत्रुओं को और इनके अतिरिक्त दूसरों में भय व्याप्त कर सको, जिन्हें तुम नहीं जानते, उन्हें अल्लाह ही जानता है।

अल्लाह की राह में तुम जो भी व्यय करोगे, तुम्हें पूरा मिलेगा और तुम्हारे साथ अन्याय नहीं होगा।

अन्फाल: 59-60

7. **"जंग के उद्देश्य' पर**

हे मोमिनो! उनसे उस समय तक जंग करो जब तक कि फ़ित्ना (उपद्रव) समाप्त हो जाए और जब तक कि न्याय एवं प्रत्येक व्यक्ति में और सभी स्थानों पर केवल अल्लाह में ही विश्वास न व्याप्त न हो जाए। तो यदि वे (फ़ित्ना से) रुक जाएं, तो अल्लाह उनके कर्मों को देख रहा है। यदि वे मुंह फेरें, तो जान लो कि अल्लाह रक्षक है और वही अच्छा संरक्षक तथा वही अच्छा सहायक है।

अन्फाल: 39-40

क) शांति की पुनर्स्थापना की आवश्यकता पर बल

यदि वे (शत्रु) संधि की ओर झुकें और अल्लाह को मानने लगें, तो तुम भी उसके लिए झुक जाओ। निश्चय ही अल्लाह सब कुछ जानने-सुनने वाला है। यदि वे संधि करके तुमसे छल करना चाहेंगे, तो अल्लाह तुम्हारे लिये पर्याप्त है। वही है जिसने अपनी सहायता तथा मोमिनों (की संगति) से द्वारा मजबूत किया है।

(इसके अतिरिक्त) उसी ने उनके मन में आपसी मुहब्बत भर दी है: तुम्हारे पास धरती पर जो कुछ है, वो सब लगा देते तो भी क्या उनके मन में मुहब्बत पैदा कर पाते? परंतु अल्लाह ने यह किया है। वास्तव में अल्लाह प्रभुत्वशाली व निपुण है।

अन्फाल: 61-63

9. **'धैर्य व गंभीरता के सद्गुण' पर**

हे नबी! मोमिनों को जंग की प्रेरणा दो। यदि तुममें से बीस धैर्यवान होंगे, तो दो सौ पर विजय प्राप्त कर लेंगे और यदि तुमसे सौ होंगे, तो उन काफ़िरों के एक हज़ार पर विजय प्राप्त कर लेंगे। क्योंकि वे समझ-बूझ नहीं रखते।

अब अल्लाह ने तुम्हारा बोझ हल्का कर दिया और जान लिया कि तुममें कुछ निर्बलता है, तो यदि तुममें से सौ धैर्यवान हों, तो दो सौ पर विजय प्राप्त कर लेंगे और यदि तुममें से एक हज़ार हों, तो अल्लाह की अनुमति से दो हजार पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेंगे। अल्लाह धैर्यवानों के साथ है अर्थात उन का सहायक है जो दुःख तथा सुख प्रत्येक दशा में अल्लाह के नियमों का पालन करते हैं।

अन्फाल: 65-66

10. 'अल्लाह की सहायता व सहयोग' पर

स्मरण करो, जब तुम बद्र की जंग के समय अपने अल्लाह से गुहार लगा रहे थे तो उसने तुम्हारी इबादत सुन ली और कहाः मैं तुम्हारी सहायता के लिए निरंतर एक हज़ार फरिश्ते भेज रहा हूं। अल्लाह ने ये इसलिये बता दिया, जिससे कि तुम निराशा से बाहर आ सको और तुम्हारे मन को संतोष हो। अन्यथा सहायता तो अल्लाह ही की ओर से होती है। वास्तव में अल्लाह प्रभुत्वशाली तत्वज्ञ है। वह समय स्मरण करो, जब अल्लाह तुम पर ऊंघाई डाल रहा था जिससे कि तुम शान्तचित्त हो सको, तुम पर आकाश से जल बरसा रहा था जिससे कि तुम्हें स्वच्छ कर दे और तुम्हारे भीतर से शैतान की मलिनता दूर कर दे, तुम्हारे मन को साहस दे और तुम्हारे पांव जमा दे। हे नबी! ये वो समय था, जब तुम्हारा पालनहार फ़रिश्तों को संकेत कर रहा था कि मैं तुम्हारे साथ हूं। तुम मोमिनों को स्थिर रखो, मैं काफ़िरों के मन में भय डाल दूंगा। इसलिये हे मुसलमानो! तुम उनकी गरदनें उतार दो तथा उनकी उंगलियां काट डालो।

अन्फाल: 9-12

11. 'जंग के बंदियों और फिरौती उगाहने' पर

किसी नबी के लिए ये उचित न था कि जब तक कि वह धरती पर अच्छी तरह़ रक्तपात न कर दे और उसे जीत न ले, कोई बंदी अपने पास रखे। तुम सांसारिक लाभ चाहते हो, जबकि अल्लाह तुम्हारे लिए आख़िरत (परलोक) का लाभ चाहता है। अल्लाह प्रभुत्वशाली तत्वज्ञ है। यदि इस विषय में पहले से अल्लाह का लेख (निर्णय) न होता तो फिरौती के रूप में जो धन तुमने लिया है, उसे लेने के लिये तुम्हें बड़ा दंड मिलता। तो अब उस माले ग़नीमत (लूट का माल अथवा बंदी बनाये गये काफिर से ली गयी फिरौती का धन) में से खाओ, वह ह़लाल (उचित) स्वच्छ है तथा अल्लाह के आज्ञाकारी रहो। वास्तव में अल्लाह अति क्षमाशील एवं दयावान है।

अन्फाल: 67-69

12. ' जंग में प्राप्त धन ' पर

हे नबी! तुमसे तुम्हारे साथी जंग में लूट का माल लेने के विषय में प्रश्न कर रहे हैं। उनसे कह दो कि जंग में मिले लूट के माल अल्लाह और रसूल के लिये हैं। अतः यदि तुम ईमान वाले हो, तो अल्लाह से डरो और आपस में पारदर्शी संबंध रखो तथा अल्लाह और उसके रसूल के आज्ञाकारी रहो।

अन्फाल: 1

13. मूर्तिपूजकों की पराजय के बाद उनको संबोधन

हे काफिरो! यदि तुम अपनी विजय और निर्णय की कामना रहे थे, तो जान लो अब निर्णय तुम्हारे पास आ चुका है। यदि तुम दूर हो जाओ (विरोध करने से), तो तुम्हारे लिए उत्तम है। यदि तुम पुन: लौटकर आओगे, तो हम भी छोड़ेंगे नहीं। भले ही तुम संख्या में कितने भी अधिक हो जाओ, पर वह काम नहीं आयेगा। निश्चय ही अल्लाह मोमिनों के साथ है।

अन्फाल: 19

14. 'जंग में अल्लाह के हाथ' के विषय में

ये तुम नहीं हो जिसने हत्या की है; ये तो अल्लाह है, जिसने उन्हें मारा है। हे नबी! जब तुमने एक मुट्ठी धूल उन पर फेंकी थी, तो वो तुमने नहीं किया था, अपितु अल्लाह ने किया था। ऐसा इसलिये हुआ जिससे कि अल्लाह मोमिनों की उत्तम परीक्षा ले। वास्तव में अल्लाह सब कुछ जानने और सुनने वाला है। अल्लाह ही वो है जो काफ़िरों की योजनाओं और तिकड़म को निर्बल करता है।

अन्फाल: 17-18

15. 'शैतान की भूमिका और व्यवहार' के विषय में

स्मरण करो, जब शैतान ने उनके (पापपूर्ण) कार्यों को लुभावना बना दिया और उसने कहाः जब तक मैं तुम्हारे निकट हूं, कोई तुमसे जीत नहीं सकता। किंतु जब दोनों फौजें एक-दूसरे के सम्मुख आ गयीं, तो वह अपनी एड़ियों के बल पलट गया और कह दिया कि "मैं तुमसे पृथक हूं। मैं जो देख रहा हूं, तुम नहीं देख रहे। वास्तव में मैं अल्लाह से भयभीत हो रहा हूं, क्योंकि अल्लाह दंड देने में कठोर है।"

अन्फाल: 48

16. फौज में एकता और सामंजस्य के विषय में मोमिनों को प्रेरणा

काफिर एक-दूसरे के संरक्षक हैं। जब तक तुम भी ऐसा नहीं करोगे (अपने में एक-दूसरे की रक्षा नहीं करोगे), तो धरती पर बड़ा फित्ना और अत्याचार होगा तथा बड़ा बुरा होगा।

अन्फाल: 73

17. 'मोमिनों को अल्लाह की सहायता के प्रभाव' के विषय में

हे नबी! तुम्हारी सहायता के लिये अल्लाह ही पर्याप्त है और उनकी सहायता के लिये भी अल्लाह पर्याप्त है, जो तुम्हारा अनुसरण करते हैं।

अन्फाल: 64

परिशिष्ट-III

उहुद की जंग: वृत्त अध्ययन

क्रमांक	तिथि व समय	कुरैशों द्वारा कार्रवाई	मुसलमानों द्वारा कार्रवाई	टिप्पणियां
1.	11 मार्च 625 ईस्वी	मदीना के मुसलमान समुदाय को नष्ट करने की मंशा से पड़ोसी मूर्तिपूजक जनजातियों के साथ-साथ मक्का से निकल पड़ना		शत्रु दल में कुल 3000 सुसज्जित सेना थी, जिसमें से 700 कवचधारी थे। उनके पास 3000 ऊंट एवं 200 घुड़सवार बल था। कुरैश सेना के कमांडर अबू सुफ्यान थे।
2.	11-20 मार्च	क) सरलता से आगे बढ़ते रहना और मदीना के निकट पहुंच जाना ख) 20 मार्च को मदीना नगर से कुछ दूर पर शिविर लगाना	पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) के पास एक गुप्तचर शत्रु की सामर्थ्य और स्थिति की सूचना लाता है।	
3.	21 मार्च	अबू सुफ्यान का अंसारों के संदेश भेजकर आह्वान करना कि वे मुजाहिर से समर्थन खींच लें। कुरैश संदेशवाहक अंसारों को तर्क देता है कि मुहम्मद को उनके समर्थन के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है कि मक्कावासी मदीनावासियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ें।	अंसारों ने कुरैशों को अपमानित करते हुए प्रस्ताव ठुकरा दिया।	
4.	22 मार्च (प्रातः)	उहुद के निकट शिविर लगाना और आसन्न युद्ध की तैयारी करना।	क) युद्ध भूमि के विकल्प पर निर्णय के लिये	क) यहूदियों के नियंत्रण वाला मदीना नगर एक ऐसे गढ़ के रूप में परिवर्तित हो गया था,

			जंगी परिषद की बैठक ख) पवित्र रसूल, अब्दुल्ला बिन उबय्य व मुसलमानों की सहयोगी जनजातियों एवं कुछ मुसलमान वरिष्ठ जनों ने मदीना के भीतर ही लड़ने के विकल्प को प्राथमिकता दी। ग) युवा मुसलमान और विशेषकर वे जिन्होंने बद्र की लड़ाई लड़ी थी, नगर के बाहर जाकर शत्रु से लड़ना चाहते थे। घ) युवा समूह बहुसंख्यक था और उसकी बात मानी गयी तथा यह निश्चित किया गया कि मदीना से 3 मील दूर उहुद में कुरैशों से जंग किया जाएगा।	जिस पर कोई रक्षक बल नियंत्रण करके सुदृढ़ स्थिति में आ सकता था। ख) युवा मुसलमानों ने कुरैशों को मदीना की घेराबंदी की अनुमति देने को कायरतापूर्ण कार्य माना। ग) मदीना के मुसलमान विशेष रूप से इस पक्ष में थे कि नगर के भीतर ही जंग लड़ी जाए। उन्होने पवित्र रसूल के कहा कि यहां तक इस्लाम से पूर्व भी, जब भी उन्होंने घेराबंदी स्वीकार की है तो कोई आक्रमणकारी उन पर नियंत्रण कर पाने में सफल नहीं हो सका है।
5.	22 मार्च (अपरान्ह)	युद्ध के लिये तैयार होना। कुरैश पक्ष की मनोदशा आनंदपूर्ण व आत्मविश्वास से भरी थी।	शुक्रवार की नमाज के बाद अब्दुल्ला बिन उबय्य के नेतृत्व वाले 300 यहूदियों समेत 1000 मुसलमान उहुद की ओर निकल पड़े।	यहूदियों की संधि थी कि मदीना पर आक्रमण करने वाले शत्रु के विरुद्ध वे मुसलमानों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर लड़ेंगे।
6.	रात्रि 22/23 मार्च	युद्ध की तैयारी के अतिरिक्त अन्य कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं	मदीना और उहुद के मध्य शुत्त नामक स्थान पर एक रात रुके।	

7.	23 मार्च	युद्धभूमि की ओर बढ़ने को तैयार	क) प्रात: शीघ्र उठकर जंग के मैदान की ओर जाने के लिये तैयार हुए। ख) अभी वे निकलते कि इससे पूर्व ही अपने 300 व्यक्तियों के समूह के साथ यहूदी अब्दुल्ला बिन उबय्य ने यह कहकर मुसलमानों का साथ छोड़ दिया कि मदीना के भीतर लड़ने के उनके परामर्श पर पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) द्वारा ध्यान नहीं दिया गया। ग) यहूदियों को साथ छोड़ता देखकर दो मुसलमान जनजातियों बनू सलमा और बनू हारिस भी मुसलमानों का साथ छोड़ने का सोचने लगे। यद्यपि बाद में उन्होंने यह विचार छोड़ दिया। घ) पवित्र रसूल ने मुसलमानों को संबोधित किया और मुसलमानों को पूर्ण मनोयोग व समर्पण के	क) आगे बढ़ने से पूर्व, युवा/बहुसंख्यक समूह ने पुनः विचार किया और पवित्र रसूल से नगर की ओर लौटने एवं इसके भीतर से लड़ने का निवेदन किया, पर पवित्र रसूल ने अपने निर्णय से नहीं हटे। ख) हो सकता है कि मदीना से बाहर निकलने से एक दिन पूर्व बहुसंख्यक समूह को यह समझ आया हो। ग) तब तक मुसलमान फौज को मनोवैज्ञानिक रूप से तीन हानि हो चुकी थी:- 1- पहला मदीना से बाहर जाकर लड़ने का हठ करने के लिये बहुसंख्यक समूह में अपराध बोध फैलने लगा। 2- यहूदियों का साथ छोड़ जाना।

			साथ लड़ने को प्रेरित किया। ङ) धरातल पर अपने श्रेष्ठ कौशल का प्रयोग करते हुए वे जंग के उस मैदान की ओर आगे बढ़े, जो कुरैशों की दृष्टि में नहीं था।	3- दो मुसलमान कबीलों द्वारा साथ छोड़ने का विचार करना।
8.	23 मार्च (प्रातः)	युद्ध के लिये अपने सैनिकों को व्यवस्थित करना। खालिद बिन वलीद के नेतृत्व और अकरमा बिन अबू जहल के उसके सहायक के रूप में अपने घुड़सवार सैनिकों को लगाना।	जंग के लिये फौजियों को व्यवस्थित किया। अब्दुल्लाह बिन जाबिर की अगुवाई में पहाड़ी के शीर्ष पर 50 तीरंदाजों को लगाया, जिन्हें पहाड़ी के एक उभरे किनारे से शत्रु की निगरानी करनी थी। पवित्र रसूल ने निर्देश दिया कि किसी भी स्थिति में वे अपना स्थान न छोड़ें।	
9.	23 मार्च (08.00-15.00 बजे)	युद्ध प्रारंभ होता है। एक के पश्चात एक आठ कुरैश योद्धा मुसलमानों को अकेले-अकेले लड़ने की चुनौती देते हैं।	चुनौती देने वाले सभी कुरैश मुसलमानों द्वारा मार डाले गये। आठ कुरैशों को अली ने मारा और दो को हम्ज़ा ने।	जंग सुबह प्रारंभ हुई और मध्याह्न तक चली। सभी घटनाओं का सटीक समय बता पाना संभव नहीं है। फिर भी उसी क्रम में सूचीबद्ध करने का पूरा प्रयास किया गया है, जिनमें वे हुए हैं।
10.	23 मार्च	युगल मल्ल युद्ध में विफल होने पर मुसलमानों पर एकसाथ टूट पड़ने के लिये आगे बढ़ते हैं।	सामान्य लड़ाई में कुरैशों को फंसाये रखा।	यहां-वहां अस्त-व्यस्त स्थिति में हाथापाई होती रही और जंग के मैदान में असमंजस उत्पन्न करने वाला दृश्य था।
11.	23 मार्च	मुसलमान फौजियों को कोई हानि पहुंचा पाने में विफल रहते हैं।	अपनी विशिष्ट उत्साह और दृढ़निश्चय के साथ लड़ते हुए मुसलमानों ने कुरैशों पर कठोर और पूरी ऊर्जा से प्रहार किया। तीरंदाज अपनी चौकियों जमे रहे और शत्रु के घुड़सवारों को बार-बार पीछे धकेलते रहे।	

12.	23 मार्च	मुसलमानों के हमले को सह पाने में असमर्थ, दबाव में पीछे हटने लगते हैं।	पूरी ऊर्जा और दृढनिश्चय के साथ प्रहार करते रहे।	क) "यह पुनः बद्र था, जहां मुसलमान अपराजेय नहीं थे।" -ग्लब ख) "मुसलमानों के हमले से पूर्व ही मक्का की सेना पीछे हट गयी, संभवतः भाग गयी"-वाट
13.	23 मार्च	कुरैश मुसलमानों का कोई सार्थक प्रतिरोध कर पाने में विफल रहते हैं और उनका पीछे हटना उनमें भगदड़ मचने की स्थिति आने का संकेत दर्शाता है।	कुरैशों पर लगभग नियंत्रण पा लेने के पश्चात मुसलमान उनका माल लूटने के लोभ में पड़ गये। उनको ऐसा करते देख तीरंदाज भी अपने-अपने स्थानों को छोड़कर लूटपाट में लग गये। उनका कमांडर यह खतरनाक कदम उठाने से सहमत नहीं था। तीरंदाजों में आपसी बातचीत होने लगी कि तैनाती चौकी छोड़ी जाए या नहीं।	
14.	23 मार्च	कुरैश सेना भयग्रस्त की स्थिति में लगभग पहुंच चुकी होती है और पीछे हटना प्रारंभ करने वाली होती है।	50 में 43 तीरंदाजों ने निर्णय किया कि वे अपनी चौकी छोड़कर लूट में सम्मिलित होंगे।	
15.	23 मार्च	खालिद टीले को खाली देखते हैं, आक्रमण करते हैं और उस पर अधिकार कर लेते हैं।	बचे हुए सात तीरंदाजों ने साहसपूर्वक लड़ा, किंतु पराजित हुए और मारे गये।	
16.	23 मार्च	टीले पर नियंत्रण करने के साथ ही खालिद किनारे से और पीछे से मुसलमान फौज पर आक्रमण करते हैं। यह चामत्कारिक घटना देखकर पीछे हट रही कुरैश सेना का उत्साह बढ़ जाता है और वह अपने सिपाहियों को पुन: व्यवस्थित करती है।	मुसलमान यह जानकर सन्निपात व अचंभे की स्थिति में चले गये कि वह टीला शत्रु के नियंत्रण में चला गया है और शत्रु ने उन पर किनारे से और पीछे से एकसाथ आक्रमण कर दिया है। फंस गये मुसलमान खालिद का सामना करने के लिये अपना मोर्चा बदल लेते हैं।	

17.	23 मार्च	खालिद के सफल आक्रमण से उत्साहित कुरैश सेना में साहस भर आता है और कुरैश सेना अपने को व्यवस्थित करती है तथा मुसलमान पक्ष पर सफल आक्रमण करती है।	दो ओर से आक्रमण होने पर मुसलमान फौजियों में घबराहट फैल गयी। फौज छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गयी और इसका कमांड बिखर गया।	
18.	23 मार्च	कुरैश सेना द्वि-धारी आक्रमण तीव्र कर देती है।	मुसलमान फौज में प्रबल भ्रम की स्थिति फैल गयी। कुछ मुसलमान फौजी जंग के मैदान से भागते हुए देखे गये।	प्रातः जंग के मैदान में निकलने से पूर्व मुसलमानों की तीन मनोवैज्ञानिक हानि होने के पश्चात यह चौथा झटका था।
19.	23 मार्च	कुरैश सेना में से कोई चीखकर कहता है कि मुहम्मद मारा गया। यह समाचार तेजी से प्रसारित होता है और कुरैश सेना में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है। आनंदित कुरैश सेना युद्ध नये उत्साह व साहस के साथ उतर पड़ती है।	प्रवादों (अफवाहों) पर मुसलमानों की मिश्रित प्रतिक्रिया रही। कुछ भयभीत हो गये और मैदान छोड़कर भाग गये। शेष अपनी ऊर्जा संचित करने लगे और गंभीर चुनौती का सामना करने की तैयारी करने लगे। अनीस बिन नजीर भगोड़ों पर चीखा, "हम जीवित क्यों हैं। आओ, हम भी उसी प्रकार मर जाएं जैसे रसूल मर गये हैं।" अनीस शत्रु से तब तक जूझता रहा, जब तक वह अपने शरीर पर 70 घाव पाकर गिर नहीं गया। यद्यपि सभी पक्षों पर विचार करने पर स्पष्ट होता है कि डटे हुए मुसलमानों की तुलना में उन मुसलमानों की संख्या अधिक थी, जो भयभीत हो गये थे।	मुसलमानों के लिये पांचवां मनोवैज्ञानिक झटका।
20.	23 मार्च	कुरैश अपना प्रहार और तेज कर देते हैं तथा चारों दिशाओं से मुसलमानों को दौड़ा लेते हैं।	भाग रहे अधिकांश मुसलमानों ने अपने पीछे स्थित उहुद की पहाड़ियों की चट्टानी ढलान पर शरण लिया। पवित्र रसूल को	इस समय तक लगभग 60 मुसलमान जंग के मैदान में मरे पड़े थे और बड़ी संख्या में मुसलमान घायल थे। अधिकांश मुसलमान रणभूमि छोड़कर भाग गये थे।

			भगोड़ों को पुकारते हुए सुना गया, 'हे अल्लाह के बंदों, आओ और मेरे चारों ओर घेरा बना लो।' उनकी पुकार व्यर्थ गयी। तथापि रसूल के साथ-साथ लड़ रहा मुसलमानों का एक छोटा सा डटा रहा।	
21.	23 मार्च	कोई परिवर्तन नहीं	एक मुसलमान लड़ाका काब बिन मालिक ने पवित्र रसूल को पहचान लिया और मुसलमानों पर चीखा कि वो जीवित हैं, पर पवित्र रसूल ने उसे चुप रहने का संकेत किया।	
22.	23 मार्च	कुरैशों का एक दल पवित्र रसूल को ढूंढ़ लेता है। तीरों की बौछार करते हुए वे रसूल के निकट आ जाते हैं और उनकी हत्या की मंशा से प्रहार करते हैं।	पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) की रक्षा कर रहे मुसलमानों ने अपने नेता की सुरक्षा के लिये अदम्य साहस व बलिदान का परिचय दिया।	
23.	23 मार्च	कुरैशों के प्रहार दल के नेता इब्न-ए-क़ैमा पवित्र रसूल पर प्रहार करके उन्हें घायल करने में सफल हो जाते हैं तथा आनंद में घोषणा करते हैं कि उन्होंने मुहम्मद को मार गिराया। कुरैश सेना में आनंद की धारा फूट पड़ती है।	पवित्र रसूल घायल हो गये और भूमि पर गिरे पड़े हैं। कुरैशों के और प्रहार को रोकने के लिये मुसलमान लड़ाके उनकी सुरक्षा में खड़े रहे।	क) जो मुसलमान रसूल के साथ थे उनके अतिरिक्त कुछ मुसलमान जानते थे कि उनको लगे घाव के विषय में जानते थे। पूर्व का वह प्रवाद कि पवित्र रसूल मारे गये वही उन मुसलमानों के पास अद्यतन सूचना थी। ख) इब्न-ए-क़ैमा द्वारा पवित्र रसूल की मृत्यु की पुष्टि किये जाने से कुरैशों का आक्रमण शिथिल हो गया।
24.	23 मार्च	कुरैश पवित्र रसूल की मृत्यु के समाचार पर आनंद मनाने लगते हैं।	मुसलमानों ने अपने घायल नेता को उठाया और उहुद के चट्टान की ओर ले गये, एक सुरक्षित खोह में पहुंचाया।	क) इस बीच, कुरैशों ने युद्ध में मारे गये मुसलमानों के शवों को क्षत-विक्षत करने में लग गये। ख) मुसलमानों के लिये छठा मनोवैज्ञानिक झटका।

25.	23 मार्च	इब्न अबी खलफ नामक एक कुरैश योद्धा रसूल के अंगरक्षक पर नियंत्रण कर लेते हैं और उसे अकेले-अकेले लड़ने की चुनौती देते हैं।	पवित्र रसूल ने चुनौती स्वीकार की और हारिस नामक व्यक्ति का तीर उनको आकर लगा, जिससे वे घायल हो गये। इब्न खलफ बाद में उसी दिन मर गया।	
26.	23 मार्च	अबू सुफ्यान उहुद के टीले के निकट पहुंच जाते हैं, किंतु मुसलमान उन्हें लड़ने के लिये बाध्य कर देते हैं। सुफ्यान यह जानकर अचंभित हो जाते हैं कि पवित्र रसूल जीवित हैं। सुफ्यान हुब्बाल और अज्जा की स्तुति करते हैं और अगले वर्ष बद्र में एक और युद्ध लड़ने की चुनौती देते हैं।	पवित्र रसूल ने उमर फारूक को चुनौती स्वीकार करने का आदेश दिया।	अपने कथनानुसार, पवित्र रसूल अगले वर्ष जंग लड़ने के लिये एक दल लेकर बद्र गये, परंतु अबू सुफ्यान वहां नहीं दिखे।
27.	23 मार्च	अबू सुफ्यान मुसलमानों से लड़ने का प्रयास किये बिना अपने शिविर में लौट जाते हैं। कुरैश अपने शिविर उखाड़ना प्रारंभ कर देते हैं।	क) पवित्र रसूल ने अली की अगुवाई में एक छोटा सा दल कुरैशों की गतिविधियों की निगरानी करने तथा उनके अगले कदम की जानकारी लेने के लिये भेजा। ख) मुसलमानों को निर्देश दिया कि यदि कुरैश मदीना पर आक्रमण करने आते हैं तो उनके साथ एक और जंग लड़ने को तैयार रहें। ग) मुसलमान फौज ने स्वयं को इस संभावित घटना	इस दल ने पुष्टि की कि कुरैश मक्का की ओर बढ़ रहे थे।

			के लिये तैयार किया।	
28.	रात्रि 23/24 मार्च	कुरैश मदीना से लगभग 8 मील दूर हमरा-अल-अस्वद नामक स्थान पर पहुंचते हैं और रातभर वहीं ठहरते हैं।	पवित्र रसूल ने स्थिति पर मंथन किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अपनी सैन्य विजय के बाद भी कुरैश मुसलमानों को नष्ट करने के अपने राजनीतिक उद्देश्य को प्राप्त करने में विफल रहे। उन्होंने आशंका व्यक्त की कि कुरैश इस विषय पर फिर सोचेंगे और मदीना पर आक्रमण करने लौटकर आयेंगे। इस कारण उन्होंने आदेश दिया कि अगली सुबह उपलब्ध सभी मुसलमान उनके नेतृत्व में कुरैशों का पीछा करेंगे।	
29.	24 मार्च	जैसा कि पवित्र रसूल का अनुमान था, कुरैश युद्ध परिषद की बैठक आहूत करते हैं कि मदीना जीतने के लिये लौटा जाए या नहीं। कुछ प्रमुख कुरैश जनों परिषद में परामर्श देते हैं कि मदीना पर आक्रमण करके उस पर अधिकार करने के लिये पुन: लौटा जाए।	विद्युत गति से पवित्र रसूल हमरा-अल-अस्वद तक पहुंच गये।	क) मुसलमान फौज की जानकारी होने पर कुरैश आननफानन में पीछे हट गये। उहुद की जंग समाप्त हो चुकी थी। ख) उहुद में मुसलमानों की पराजय ने शत्रु को ऐसा दिग्भ्रमित किया कि वे मानने लगे इस्लाम लुप्त होने की ओर है। तद्नुसार उनमें से सभी ने मुसलमानों को पूर्णरूपेण नष्ट करने के प्रयास में उनके प्रति वैरभाव पाल लिया। यह ध्यान देने योग्य है कि ऐसी संकटपूर्ण स्थिति के बाद भी पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) ने कभी भी अपने शत्रुओं के पास अवसर नहीं जाने दिया। इसकी अपेक्षा उन्होंने दो वर्ष बाद, खंदक की जंग में कुरैशों की पराजय के बाद, अवसर को पूर्णत: झटक लिया।

परिशिष्ट IV

उहुद पर अल्लाह की समीक्षा

1. 'रणभूमि के विकल्प के संबंध में विवाद' पर

उनसे भी (उस समय) के प्रकरण में परामर्श करो। फिर जब कोई निर्णय कर लो, तो अल्लाह पर विश्वास करो। निस्संदेह, अल्लाह विश्वास करने वालों से प्रेम करता है। यदि अल्लाह तुम्हारी सहायता करे, तो तुम पर कोई प्रभुत्व नहीं पा सकता तथा यदि वह तुम्हारी सहायता न करे, तो फिर कौन है जो उसके पश्चात तुम्हारी सहायता कर सके? अतः मोमिनों को अल्लाह ही पर विश्वास करने दो।

आले-इमरान: 159-160

2. बनू सलमा और बनू हारिस कायरता के विचार पर

स्मरण करो, जब तुममे से दो पक्षों ने कायरता दिखाने का विचार किया। किंतु अल्लाह उनका रक्षक था तथा मोमिनों को सदा अल्लाह पर ही विश्वास करना चाहिए। जब तुम बद्र में निर्बल थे, तो अल्लाह तुम्हारी सहायता कर चुका है। अतः अल्लाह से डरते रहो, इस प्रकार उसके प्रति कृतज्ञ रहो।

आले-इमरान: 122-123

3. यहूदियों के साथ छोड़ने पर रसूल का संबोधन

वो समय भी स्मरण करो, जब तुम मोमिनों से कह रहे थेः क्या तुम्हारे लिए ये बस नहीं है कि अल्लाह तुम्हें आकाश से उतारे हुए, तीन हज़ार फ़रिश्तों द्वारा सहायता दे? हां! यदि तुम डटे रहोगे, आज्ञाकारी रहोगे और वे (शत्रु) तुम्हारी प्रचण्ड वेग से आ जाएं, तो तुम्हारा अल्लाह तुम्हें (तीन नहीं) पांच हज़ार प्रमाणयुक्त फ़रिश्तों द्वारा समर्थन देगा। अल्लाह ने तुम्हारे पास यह सूचना इसलिये भेजी है, जिससे तुम्हारे मन को संतोष हो जाए। सहायता तो केवल अल्लाह ही के पास से आती है, जो प्रभुत्वशाली तत्वज्ञ है, जिससे कि वह काफिरों का एक भाग काट दे अथवा उन्हें ऐसा अपमानित कर दे कि पुनः वे असफल होकर वापस हो जायँ, अपने उद्देश्य में विफल हो जाएं।

आले-इमरान: 124-127

4. लूट के माल के लोभ के कारण उत्पन्न संकट की स्थिति पर

स्मरण करो, जब तुम चढ़े (भागे) जा रहे थे और तुम्हारे पीछे खड़े रसूल तुमको वापस आने के लिये पुकार रहे थे। पर तुम थे कि अगल-बगल भी नहीं देख रहे थे, तो बदले में अल्लाह ने तुम्हें एक के बाद एक विपत्ति दी, तुम्हें यह सीख देने के लिये कि जो (लूट का माल) तुमसे दूर चला गया, जो विपत्ति तुम पर आयी उसके लिये दुखी मत हो। क्योंकि अल्लाह सब जानता है कि तुम क्या कर रहे हो।

आले-इमरान: 153

5. पवित्र रसूल की मृत्यु के प्रवाद (अफवाह) के संबंध में

मुहम्मद केवल एक रसूल है। इससे पहले बहुत से रसूल हो चुके हैं, तो क्या यदि वो मर गये अथवा मार दिये गये, तो तुम उल्टे पांव भाग जाओगे? जो उल्टे पांव भागेगा, वो अल्लाह को तो कुछ हानि नहीं पहुंचा सकेगा। वहीं दूसरी ओर अल्लाह उनको शीघ्र ही पुरस्कार व प्रतिफल देगा, जो उसके प्रति कृतज्ञ रहेंगे। कोई प्राणी ऐसा नहीं कि अल्लाह की अनुमति के बिना मर जाए, उसका जीवन काल लिखित रूप में निश्चित किया गया है। यदि कोई इस संसार में पुरस्कार की इच्छा करेगा तो हम उसे देंगे और यदि कोई परलोक का पुरस्कार चाहेगा, तो हम उसे वो भी देंगे। हम उन सबको पुरस्कार और प्रतिफल देंगे, जो कृतज्ञता के भाव से हमारी सेवा करेगा।

आले-इमरान: 144-145

6. "**कुरैशों द्वारा प्रतिघात करने से उत्पन्न आपदा**" **पर**

कितने ही नबी थे, जिनके साथ होकर बहुत से अल्लाह वालों ने जंग किया। किंतु अल्लाह के मार्ग में जंग करते समय उन पर आपदा आयी तो वे कभी निराश नहीं हुए, न ही उनकी इच्छाशक्ति दुर्बल हुई और न ही वे शत्रु से दबे। अल्लाह को वो प्रिय हैं, जो दृढ़ व धैर्यवान होते हैं।

उन्होंने बस यही कहा: हे हमारे स्वामी! हमारे पापों या हमसे कुछ ऐसी भूल हो गयी हो, जिससे हम कर्तव्यपथ से विमुख हुए हों, उसे क्षमा करो। हे अल्लाह! हमारे पांव दृढ़ता से जमाओ और उनसे लड़ने में हमारी सहायता करो जो इस्लाम का विरोध करते हैं।" तो अल्लाह ने उन्हें इस सांसारिक जीवन में भी पुरस्कार दिया और इसके बाद परलोक में भी और अच्छा पुरस्कार दिया। क्योंकि अल्लाह उनसे प्यार करता है जो अच्छा करते हैं।

आले-इमरान: 146-148

तो तुम हताश मत हो, निराशा में मत डूबो, क्योंकि यदि तुम सच्चे मोमिन हो, तो तुम ही सर्वोच्च रहोगे। यदि तुम्हें कोई घाव लगा है, तो क़ौम (शत्रु) को भी ऐसा ही घाव लग चुका है। हम एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति पर विभिन्न प्रकार के ऐसे दिन लाते रहते हैं, जिससे कि अल्लाह उन लोगों को जान ले, जो अल्लाह और उसके रसूल पर विश्वास करते हैं और अल्लाह तुममें से शहीद चुनकर, सत्य के प्रति साक्षी चुनकर अपने पास पास लाये। अल्लाह अत्याचारियों से प्रेम नहीं करता। अल्लाह का उद्देश्य जो इस्लाम में विश्वास करते हैं, उन्हें शुद्ध करना भी होता है और जो इस्लाम को नकारते हैं, उन्हें अपनी कृपा से दूर करना होता है।

आले-इमरान: 139-141

7. **शत्रु की कार्रवाई से जो भयभीत हो गये थे उनको संबोधन**

यदि तुम अल्लाह के उद्देश्य में मर जाओ अथवा मार दिये जाओ तो उत्तम है, क्योंकि जीवित रहकर जो कुछ तुम कमाते उससे उत्तम है, अल्लाह की क्षमा और दया प्राप्त करना। यदि तुम मर जाते हो या मार दिये जाते हो, तो तुम सब एक साथ अल्लाह के पास ही तो लाये जाओगे।

आले-इमरान: 157-158

जो अल्लाह की राह में मार दिये गये, उन्हें मरा हुआ न समझो। नहीं। वे तो जीवित हैं, अपने स्वामी (अल्लाह) के सान्निध्य में स्थान पाने जा रहे हैं। वे भोग रहे हैं... (शहीदों का) वैभव अल्लाह द्वारा प्रदान किये गये माल को। वास्तविकता तो यह है कि उनको अब कोई भय नहीं है, कोई दुख नहीं है, वे प्रसन्न (हर्षित) हो रहे हैं।

आले-इमरान: 169-170

8. **'बहुसंख्यक' समूह को संबोधन**

तुमने क्या समझ रखा है कि अल्लाह द्वारा यह परीक्षा लिये बिना कि तुममें से किसने उसके मार्ग में जंग लड़ी है और कौन दृढ़निश्चयी रहा है, जन्नत में प्रवेश पा जाओगे?

तुम उससे मिलने से पूर्व ही मृत्यु की कामना कर रहे थे: तो अब तुमने उसे आंखों से देख लिया है (और देख रहे हो।)

आले-इमरान: 142-143

9. **'मुसलमानों की पराजय के कारण' पर**

जब दो फौजें आमने-सामने थीं, तो उस दिन तुममें से कुछ भाग खड़े हुए थे। वह शैतान ही था जिसने उन्हें विफल कर दिया था, क्योंकि उन्होंने कुछ बुरा किया था। पर अल्लाह ने उन्हें अपराधों से मुक्त कर क्षमा कर दिया। क्योंकि अल्लाह सदा क्षमाशील, अति सहिष्णु है।

आले-इमरान: 155

क्या! जब तुम पर एक विपत्ति आयी, तो तुमने शत्रुओं को उसकी दोगुनी विपत्ति दी, "तब भी कह रहे कि तुम पर दुख कहां से आया? नबी! बता दोः ये तुम्हारे पास से आया है। अल्लाह जो चाहे कर सकता है।"

आले-इमरान: 165

जब दोनों फौजें आमने-सामने आयीं, तो उस दिन तुम पर जो भी आपदा आयी, वो अल्लाह की इच्छा से आयीं, जिससे कि वह मोमिनों की परीक्षा ले सके।

आले-इमरान: 166

अल्लाह ने तुमसे अपना वचन सच कर दिखाया है, जबकि तुम उसकी अनुमति से उन्हें काट रहे थे और यहां तक कि जब तुमने कायरता दिखायी तथा रसूल के आदेश में विवाद उत्पन्न किया और उसकी अवज्ञा की, और जब इसके पश्चात् कि तुम्हें वह (लूटने के लिये पड़ा माल) दिखा दिया, जिसे तुम चाहते थे। तुममें से कुछ सांसारिक लाभ चाहते हैं और कुछ परलोक में लाभा की इच्छा रखते हैं। तब उसने शत्रु की ओर से तुम्हारा ध्यान भटका दिया, जिससे कि तुम्हारी परीक्षा ले सके, पर अंततः उसने तुम्हें क्षमा कर दिया, क्योंकि अल्लाह उन पर पूरी कृपा रखता है, जो उसके दीन में विश्वास रखते हैं।

आले-इमरान: 152

10. **अल्लाह की इच्छा और इसकी प्राप्ति पर**

इसके बाद तुम पर उस विपत्ति की व्याकुलता के पश्चात् शान्ति (ऊँघ) उतार दी। तुम्हारा एक दल ऊँघने लगा, जबकि दूसरा दल अज्ञानतावश अल्लाह के विषय में गलत संदेह से उपजी चिंता से व्याकुल था।

> वे कह रहे थे कि हमारा भी कुछ अधिकार है क्या? हे नबी! उनसे कह दो कि सब अधिकार अल्लाह को है। वे अपने मन में जो छुपा रहे थे, तुम्हें नहीं बता रहे थे, वो यह था कि वे कह रहे थे "यदि हमारा कोई अधिकार होता, तो हमें यहां मरने-कटने के लिये नहीं छोड़ा जाता।" उनसे कह दो: यदि तुम अपने घरों में रहते, तब भी जिनके (भाग्य में) मारा जाना लिखा है, वे अपनी मृत्यु के नियत स्थान पर चले ही जाते। किंतु यहां जो हुआ,

वो इस कारण हुआ जिससे कि जो तुम्हारे मन में है, अल्लाह उसकी परीक्षा ले सके तथा जो तुम्हारे मन में जो चल रहा है, उसे शुद्ध कर दे। क्योंकि अल्लाह मन के भेद को जानता है।

आले-इमरान: 154

11. उहुद के अगले दिन जिन्होंने अबू सुफ्यान का पीछा किया, उनके विषय में

जिन्होंने घायल होने के बाद भी अल्लाह और रसूल की पुकार सुनी, जिन्होंने दीन का काम किया और कुफ्र से दूर रहे, उनके लिए बड़ा पुरस्कार है। ये वे लोग हैं, जिनसे लोगों ने कहा "तुम्हारे विरुद्ध बड़ी सेना एकत्र हो रही है" और भयभीत कर दिया। पर इससे उनका दीनी विश्वास और बढ़ गया। उन्होंने कहा, "हमारे लिये अल्लाह पर्याप्त है और वही हमारे भाग्य का सर्वोत्तम निपटारा करने वाला है।"

आले-इमरान: 172-173

12. 'जंग के पश्चात शत्रु के अपप्रचार' पर

हे मोमिनो! यदि तुम काफ़िरों की बात मानोगे, तो वे तुम्हें एड़ियों के बल लौटाकर वहीं पहुंचा देंगे जहां से तुम चले थे तथा तब तुम दीन से विमुख हो जाओगे और अपनी हानि करा बैठोगे।

आले-इमरान: 149

13. **'भविष्य' पर**

अल्लाह मोमिनों को उस स्थिति में नहीं छोड़ेगा जिसमें आज वे हैं, जब तक कि वह (अल्लाह) जो बुरा है उसे अच्छे से पृथक न कर दे।

आले-इमरान: 179

शीघ्र ही हम काफ़िरों के मन में भय डाल देंगे। उन्होंने अल्लाह का साझी उसे बना लिया है, जिसका कोई प्रमाण अल्लाह ने नहीं भेजा है और ऐसे लोगों का स्थान दोजख (नर्क) की आग होगा: और ऐसे लोग वहीं जाएंगे, जो बहुत बुरा स्थान है।

आले-इमरान: 151

परिशिष्ट V

खंदक पर पवित्र कुरआन

1. **'मदीना की घेराबंदी और इसके प्रभाव' पर**

ध्यान रखना, जब वे तुम पर चढ़ आये, ऊपर से तथा नीचे से और जब आंखें पथराने लगीं तथा प्राण संकट में आने लगा, तो तुम अल्लाह को लेकर अनेक व्यर्थ विचार करने लगे।

उस स्थिति में मोमिनों की परीक्षा ली गयी, उन्हें पूर्ण रूप से झिंझोड़ दिया गया।

अहजाब: 10-11

2. **मुसलमानों पर अल्लाह की कृपा के संबंध में**

हे मोमिनो! स्मरण करो अल्लाह की वह कृपा (बरसी) तुम पर, जब शत्रु चढ़ आये थे (तुम पर नियंत्रण करने):परंतु हमने उनकी ओर चक्रवात और ऐसी फौज भेज दी, जिसे तुमने नहीं देखा। किंतु तुम जो कर रहे थे अल्लाह वो सब स्पष्ट देख रहा था।

अहजाब: 9

3. **भितरघातियों के आचरण और व्यवहार के विषय में**

ध्यान रहे! भितरघाती और वो जिनके मन में मैल है, कहते हैं: ''अल्लाह और उसके रसूल ने हमें कुछ देने का कोई वादा नहीं किया है, ये दोनों तो भ्रमजाल (धोखा) हैं।''

ध्यान रहे! उनमें से एक दल ने कहा: ''हे यसरिब वालो! तुम आक्रमण झेल नहीं पाओगे! अत: वापस लौट जाओ।'' उनमें से एक दल यह कहकर रसूल से वापस जाने की अनुमति मांगने लगा कि हमारे घर खाली और असुरक्षित स्थिति में हैं, जबकि वो खाली न थे। उनकी मंशा और कुछ नहीं, बस भाग जाने की थी। यदि फौजें मदीना के किनारे से नगर में प्रवेश कर जातीं और घेर लेतीं, फिर उन लोगों को मुसलमानों से विद्रोह करने के लिये उकसाया जाता तो अवश्य ही वे शत्रु के साथ मिलकर उपद्रव कर देते और उसमें तनिक भी विलम्ब नहीं करते!

जबकि उन्होंने अल्लाह से समझौता किया था, उसे वचन दिया था कि पीठ नहीं दिखायेंगे। अल्लाह को दिये गये वचन को (निश्चित) निभाना ही पड़ता है।

अहजाब: 12—15

4. **'मृत्यु की अपरिहार्यता' पर**

कह दो: भाग जाने से कोई लाभ नहीं होने वाला है। यदि तुम मृत्यु अथवा काट दिये जाने के भय से भाग रहे हो; और भले ही यदि (तुम बचकर निकल भी जाओ), तो थोड़े समय के लिये सुख भले ही मिल जाए, पर इस सुख को बहुत दिन भोग पाओगे क्या!"

अहजाब: 16

5. **'अल्लाह के दंड /दया' पर**

उनसे कह दो: यदि अल्लाह तुम्हें दंड देना चाहे या तुम पर दया करना चाहे, तो कौन है भला जो तुम्हें उससे बचा सके? न ही वे अपने लिए, अल्लाह के अतिरिक्त, कोई और संरक्षक या सहायता करने वाला पा सकेंगे।

अहजाब: 17

6. **भितरघातियों के मनोविज्ञान का विश्लेषण**

वस्तुत: अल्लाह जानता है तुममें से वो कौन हैं जो (लोगों को) रोकते हैं तथा अपने बंधुओं से कहते हैं कि हमारे पास चले आओ, परन्तु थोड़े समय को छोड़कर वे जंग लड़ने नहीं आते हैं।

वे तुमपर बड़े लोभी हैं। फिर जब भय का समय आ जाता है, तो तुम उन्हें अपनी ओर ऐसे देखते हुए पाओगे जैसे कि कोई मरणासन्न दशा वाला व्यक्ति हो: परंतु जब भय दूर हो जाता है तो वे धन के लोभी होकर तुम पर तेज ज़ुबानी तीर के प्रहार करेंगे। ऐसे लोगों का दीन पर विश्वास नहीं होता। अतः अल्लाह ने उनके सभी पुण्य कार्यों को प्रभावहीन कर दिया और अल्लाह के लिये यह करना बहुत सरल है।

वे समझते हैं कि शत्रु दल का गठबंधन वापस नहीं गया है; और यदि वे (शत्रु) लौट आयें, तो वे चाहेंगे कि घुमंतुओं के साथ रेगिस्तान में भटकें तथा (दूर सुरक्षित रहकर) तुम्हारे विषय में समाचार जानते रहें; यदि वे तुम्हारे बीच भी होते तो इसकी संभावना कम ही थी कि जंग लड़ते।

अहजाब: 18-20

7. **'मोमिनों के मनोविज्ञान' पर**

जब मोमिनों ने महागठबंधन सेना को देखा तो वे बोले: "यही तो है वह जो अल्लाह और उसके रसूल ने हमें देने का वचन दिया था। अल्लाह और उसके रसूल ने वही तो कहा था, जो सच है।" और इससे अल्लाह और उसके रसूल में उनका विश्वास एवं आज्ञापालन का उनका उत्साह और बढ़ गया।

मोमिनों में कुछ वे भी हैं, जो अल्लाह से किये हुए अपने समझौते पर खरे उतरे: उनमें से कुछ ने अल्लाह को दिया वचन पूरा भी कर दिया है, जबकि कुछ अभी भी ऐसा करने के लिये प्रतीक्षा कर रहे हैं: पर उन्होंने (अपने संकल्प में) कभी भी तनिक सा परिवर्तन नहीं किया है: कि अल्लाह उनकी निष्ठा के लिये पुरस्कृत करे या यदि वह चाहे तो ढोंगियों को दंडित करे अथवा उन पर दया करे: क्योंकि अल्लाह सदा क्षमाशील और अति दयावान है।

अहजाब: 22—24

8. **काफिरों की नियति के संबंध में**

और अल्लाह ने अपने कोप के साथ काफ़िरों को (मदीना से) वापस कर दिया है। उनको कोई लाभ नहीं हुआ। मोमिनों को उनकी जंग में साथ देने के लिये अल्लाह ही पर्याप्त है। और अल्लाह अति सामर्थ्यवान तथा अपनी इच्छा मनवाने में प्रभुत्वशाली है।

और पुस्तक के वे लोग (यहूदी), जिन्होंने उनकी सहायता की- अल्लाह ने उन्हें उनकी गढ़ियों से नीचे उतार फेंका और उनके मन में भय भर दिया, (जिससे कि) उनमें से कुछ को तुमने काट डाला और कुछ को बंदी बना लिया।

और अल्लाह ने तुम्हें उनकी भूमि, उनके घर, उनकी वस्तुएं और ऐसी धरती का उत्तराधिकारी बना दिया जिस पर तुमने इससे पहले कभी पैर नहीं रखा था। और अल्लाह जो चाहे कर सकता है।

अहजाब**: 25-27**

9. **'पवित्र रसूल के व्यक्तित्व' पर**

वास्तव में जो कोई भी अल्लाह, कयामत में विश्वास करता है और अल्लाह की इबादत में लगा रहता है, उसके लिए वास्तव में अल्लाह के रसूल (के आचरण) में एक सुंदर प्रारूप है।

अहजाब: 21

परिशिष्ट VI

हुदैबिया पर अल्लाह का निर्णय

1. **'हुदैबिया की संधि' के विषय में**

वास्तव में हमने ही यह विशाल विजय प्रदान की है: यह कि अल्लाह उनके अगले और पिछले अपराधों को क्षमा कर दे; उन पर अपनी कृपा बरसाये; तथा सीधी राह दिखा सके; तथा यह कि अल्लाह उनकी भरपूर सहायता करे।

फतह: 1-3

2. **'मोमिनों पर अल्लाह की कृपा'**

वही है जिसने मोमिनों के हृदय में शांति उतारी, कि उनका अपने दीन पर विश्वास और अधिक जम जाए;- क्योंकि धरती और आकाश के बल अल्लाह के ही हैं; और अल्लाह सब कुछ और सब गुणों को जानने वाला है।

कि वह उन मर्दों और औरतों को उस जन्नत में प्रवेश दे, जहां बागों के नीचे नदियां बहती हैं, सदा अल्लाह की आंखों के सामने रहेने के लिये और वह उनके भीतर से बुराइयों को दूर कर दे;- यह अल्लाह की दृष्टि में यह सबसे बड़ी उपलब्धि है (मर्दों के लिये)।

फतह: 4-5

जब काफ़िरों ने अपने मन में छल और कपट भर लिया- अज्ञानता का क्रोध व कपट,- तो अल्लाह ने अपने रसूल और मोमिनों पर ऊंघ भेज दी, और उन्हें स्व-नियंत्रित रहने की कगार पर ले आया; और वे इसके पात्र भी थे और इसके योग्य भी। तथा अल्लाह प्रत्येक बात को भली-भांति जानने वाला है।

फतह: 26

3. **'पाखंडियों व बहुदेववादियों को दंड' पर**

और यह कि वह मुनाफ़िक़ (भीतर से इस्लाम को नकारने वाले) पुरुषों तथा स्त्रियों एवं बहुदेववादी स्त्रियों व पुरुषों को दंड दे, जो अल्लाह के विषय में बुरा विचार रखते हैं। उन पर बुरी आपदा आएगी: उन पर अल्लाह का प्रकोप होगा। अल्लाह ने उन्हें बुरा कहा है और उनके लिये दोजख तैयार रखा है। दोजख ही उनका गंतव्य है।

फतह: 6

4. **'अल्लाह के आनंद की प्रतिज्ञा' पर**

हे नबी! जो तुम्हारे हाथ पर हाथ रखकर वचन देते हैं, वो वास्तव में अल्लाह को वचन देते हैं: अल्लाह का हाथ उनके हाथों के ऊपर है: फिर जिसने वचन तोड़ा, तो वह अपने को ही हानि पहुंचायेगा तथा जो वह वचन पूरा करेगा जो उसने अल्लाह से समझौते में दिया है,- उसे अल्लाह शीघ्र ही बड़ा पुरस्कार देगा।

मोमिन जब उस वृक्ष के नीचे रसूल के हाथ पर हाथ रखकर वचन दे रहे थे तो अल्लाह उनसे प्रसन्न हुआ। जो कुछ उनके मन में था, उसने जान लिया और इसलिये उनके मन को शांति पहुंचायी तथा उन्हें बदले में शीघ्र विजय का पुरस्कार दिया।

फतह: 10, 18

5. **'रसूल के सपने को पूरा करने' के विषय में**

निश्चय ही अल्लाह ने अपने रसूल के सपने को पूरा किया: अल्लाह ने चाहा, तो तुम निर्भय होकर, सिर मुंड़ाये हुए तथा बाल कतरवाते हुए मस्जिदे हराम में अवश्य प्रवेश करोगे। क्योंकि जो तुम नहीं जानते वह अल्लाह जानता है और इसीलिये उसने तुम्हें शीघ्र विजय प्रदान की है।

फतहः 27

6. **'पवित्र रसूल और उनके साथियों' के संबंध में**

मुहम्मद अल्लाह का रसूल है: और जो लोग उसके साथ हैं, वे काफ़िरों के विरुद्ध कठोर हैं, किंतु आपस में एक-दूसरे के प्रति दया भाव रखने वाले लोग हैं। तुम उन्हें अल्लाह की कृपा और आनंद पाने के लिये (इबादत में) नमाज पढ़ते हुए देखोगे। उनके मुख पर उसके चिह्न दिखेंगे, उनकी नमाज के लक्षण (होते हुए) दिखेंगे। उनकी ये विशेषता तौरात में है तथा इंजील में कुछ ऐसे है: मानों यह वो खेती हो, जिसमें पहले मुलायम अंकुर फूटता है, फिर इस अंकुर को बल देता है जिससे वह कड़ा हो जाता है, फिर वह (खेती) अपने तने पर खड़ी हो जाती है और किसान हर्षित व आनंदित हो उठता है। परिणामस्वरूप काफिरों में उसे देखकर जलन व क्षोभ उत्पन्न होने लगती है। अल्लाह ने उन्हें क्षमा व बड़े पुरस्कार का वचन दे रखा है, जो उसमें विश्वास करते हैं और दीन के मार्ग पर चलते हैं।

फतह: 29

परिशिष्ट VII

तबूक पर कुरआनी संदेश

1. **जंग लड़ने के आदेश की अवहेलना करने वालों के विषय में**

हे मोमिनो! तुम्हें हो क्या हो गया है कि जब तुमसे कहा जाए कि अल्लाह के मार्ग में निकलो, तो धरती पर चिपककर चुपचाप बैठ जाते हो? क्या तुम्हारी प्राथमिकता आख़िरत (परलोक) की अपेक्षा यह सांसारिक जीवन हो गयी है? पर आख़िरत के जीवन की तुलना में इस जीवन का सुख बहुत थोड़ा है। यदि तुम नहीं निकलोगे, तो तुम्हें अल्लाह दुःखदायी दंड देगा और तुम्हारे स्थान पर दूसरे लोगों को ले आयेगा; तथा तुम अल्लाह की कोई हानि भी नहीं कर सकोगे। क्योंकि अल्लाह जो चाहे कर सकता है।

तौबा: 38—39

2. **'अल्लाह की सहायता व सहयोग' पर**

यदि तुम उस (नबी) की सहायता नहीं करोगे, तो कोई बात नहीं: अल्लाह ने ही वास्तव में उसकी सहायता की: जब काफिरों ने उसे निकाल दिया था: जब उसके पास केवल एक साथी रह गया था: वे दोनों खोह में थे और तब वह अपने साथी से कह रहा था: भयभीत मत हो, अल्लाह हमारे साथ है: तब अल्लाह ने अपनी ओर से उसके मन पर शान्ति उतार दी और उसे ऐसी फौज की सहायता भेजी जिसे तुमने नहीं देखा तथा अल्लाह ने काफिरों की बात नीची कर दी। अल्लाह की बात ही ऊंची रही: क्योंकि अल्लाह प्रभुत्वशाली तत्वज्ञ है।

तौबा: 40

3. **'लड़ने से छूट' पर**

अल्लाह कृपा करे! तुमने उन्हें छूट क्यों दे दी, जब तक कि तुम्हारे लिए जो सच्चे हैं, वे पहचान में न आ जाएं और जो झूठे हैं उनका भी चरित्र उजागर हो जाए?

तौबा: 43

जो अल्लाह तथा कयामत में विश्वास करते हैं वे अपने धन व शरीर से जंग अर्थात जिहाद करने में (पीछे रह जाने की) छूट नहीं मांगते हैं। अल्लाह उन्हें भली-भांति जानता है, जो दीन पर चलते हैं।

तौबा: 44

उनसे छूट वही मांगते हैं, जो अल्लाह और कयामत के दिन पर विश्वास नहीं रखते और जिनका मन संदेह से भरा है। इस कारण वे उधेड़बुन में पड़े हुए हैं।

तौबा: 45

यदि उनकी निकलने की मंशा होती तो वे उसके लिये अवश्य ही कुछ तैयारी करते; परन्तु अल्लाह को उनका जाना अप्रिय था, अतः उसने उन्हें आलसी बना दिया और उन्हें कहा गया कि "उन्हीं के साथ बैठे रहो जो निष्क्रिय होकर बैठे हैं।"

तौबा: 46

यदि वे तुम्हारे साथ निकलते भी, तो वे तुमको कोई बल नहीं देते, अपितु तुम्हारे बीच रहकर इधर-उधर की बातें करते हुए अव्यवस्था उत्पन्न करते और तुम्हारे बीच विद्रोह की भावना भरते। तुम्हारे बीच कुछ ऐसे लोग हैं जो उनकी बातों पर ध्यान देते: परंतु अल्लाह सब जानता है कि कौन गलत कर रहा है।

तौबा: 47

वे इससे पहले भी विद्रोह कराने का षडयंत्र रच चुके हैं और उनके बीच बातों में हेर-फेर कर चुके हैं। यहां तक कि सत्य आ गया और अल्लाह का आदेश प्रभावी हो गया, तब भी उन्हें यह पच नहीं रहा। उनमें से बहुत से ऐसे भी हैं: जो कहते हैं, "मुझे जंग न लड़ने की छूट दो और इस संकट में न डालो।" क्या वे पहले ही संकट में नहीं पड़े हुए हैं? वास्तव में काफिरों को चारों ओर से जहन्नुम घेरेगा।

तौबा: 48-49

जंग न लड़ने पर उनको कोई दोष नहीं लगता, जो दुर्बल हैं या रोगी हैं अथवा जिसके पास दीन के मार्ग में व्यय करने के लिये कोई संसाधन नहीं है, किंतु यदि वे अल्लाह और उसके रसूल के प्रति अपने कर्तव्यों को मानते रहें तो; दीन की राह में चलने वाले ऐसे लोगों पर दोषारोपण का कोई आधार नहीं है। अल्लाह सदा क्षमाशील, अति दयावान है।

तौबा: 91

न ही उनको कोई दोष लगता है, जो तुम्हारे पास जब आयें कि जंग में जाने के लिये तुम उनकी सवारी की व्यवस्था कर दो और तुम कहो कि मेरे पास इतना नहीं कि तुम्हारे लिए सवारी की व्यवस्था करूं तो वे यह सोचते हुए आंखों में दुख के आंसू लेकर वापस हों कि उनके पास सवारी का व्यय वहन करने के लिये संसाधन नहीं है।

तौबा: 92

दोष केवल उन पर है, जो धनी होने के बाद भी तुमसे सवारी की व्यवस्था न होने का बहाना बनाकर जंग में जाने से छूट मांगते हैं। वे सोचते हैं कि अपनी स्त्रियों के साथ समय बितायेंगे। अल्लाह ने उनके मस्तिष्क को बंद कर दिया है, जिससे कि वे सोच ही न पायें कि जंग लड़ने न जाकर उन्होंने क्या खो दिया।

तौबा: 93

4. **'जो जंग लड़ने से बचे, उनके बारे में अल्लाह के निर्णय' पर**

वे तबूक के अभियान में पीछे रह गये थे, अल्लाह के रसूल के पीछे अपनी निष्क्रियता पर आनंदित हो रहे थे। वे अपने धन और प्राण के साथ आगे बढ़कर अल्लाह की राह में जंग करने से दूर भागते थे। उन्होंने कहा कि इस तपती गर्मी में न निकलो। उनसे कह दो, "यदि वे समझ सकें तो समझ लें कि दोजख की आग की गर्मी इससे भीषण है।" कुछ समय उन्हें हंस लेने दो, फिर तो सदा के लिये उन्हें रोना ही है। जो वे कर रहे हैं, उसके बदले उन्हें आंसू ही मिलने चाहिए।

तौबा: 81-82

हे नबी! यदि अल्लाह इन (दुविधाग्रस्त लोगों को) के किसी गिरोह के पास (तबूक से) वापस लाये और वे तुमसे (किसी दूसरे जंग में) जाने की अनुमति मांगें, तो तुम कह देना, "अब तुम मेरे साथ कभी नहीं निकलोगे और न मेरे साथ किसी शत्रु से जंग कर सकोगे। क्योंकि पहले अवसर पर तुम्हें निठल्ले बैठे रहना प्रिय था तो अब पीछे निठल्ले बैठे लोगों के साथ ही पड़े रहो।"

तौबा: 83

(हे नबी!) आप उनमें से कोई मर जाए, तो उसके जनाज़े की नमाज़ कभी न पढ़ो और न उसकी क़ब्र पर खड़े हों। क्योंकि उन्होंने अल्लाह और उसके रसूल को नकारा है और अवज्ञाकारी रहते हुए मरे हैं।

तौबा: 84

न ही उनके धन अथवा संतानों से प्रभावित हो। अल्लाह तो चाहता है कि इनके द्वारा उन्हें इसी संसार में दंड दे और वे काफिर के रूप में ही मरें।

तौबा: 85

हे नबी! जब कोई सूरा उतारी गयी कि अल्लाह पर विश्वास लाओ तथा उसके रसूल के साथ होकर जिहाद (जंग) करो, तो उन (मुनाफ़िक़ों) में से धनी व प्रभावशालियों ने तुमसे जंग में न जाने से छूट मांगी और कहा, ''तुम हमें यहीं रहने दो। हम उनके साथ ही बैठे रहेंगे जो घर में बैठे हैं।'' जो पीछे घरों में बैठे रह गये थे, वे अपनी स्त्रियों के साथ आनंद करना चाहते थे। उनके बुद्धि हर ली गयी है, जिससे वे अपना अपराध नहीं समझ रहे।

तौबा: 86—87

5. **'मोमिनों को अल्लाह के वचन' पर**

निस्संदेह अल्लाह ने मोमिनों के प्राण व उनके धन को उन्हें जन्नत देने के बदले क्रय कर लिया है। वे अल्लाह के मार्ग में जंग करते हैं, वे मारते तथा मरते हैं। ये अल्लाह पर सत्य वचन है, तौरात, इंजील और कुरआन में। अल्लाह से बढ़कर अपना वचन पूरा करने वाला कौन हो सकता है? अतः, तुमने अल्लाह से जो सौदा किया है, उस पर प्रसन्न हो जाओ, क्योंकि यह तुम्हारी सबसे बड़ी उपलब्धि है।

तौबा: 111

अध्याय 10

प्रमुख निष्कर्षों का सारांश

मक्का में पवित्र रसूल के प्रथम बारह वर्षों के अभियान की अवधि में मुसलमान न तो एक उम्मा (समुदाय) घोषित किये गये और न ही उन्हें जंग का आश्रय लेने की अनुमति मिली। उनके मदीना प्रवास के पश्चात अल्लाह के संदेश ने उन्हें एक उम्मा घोषित किया और येरूशलम स्थित काबा के स्थान पर मक्का में एक नया काबा निर्धारित किया गया। एक उम्मा के रूप में उद्घोषणा के पश्चात शीघ्र ही मोमिनों को मूर्तिपूजकों के विरुद्ध हथियार उठाने की अनुमति मिली।

उम्मा को सौंपे गये मिशन ने अपने अनुशोधन, न्याय, सत्यनिष्ठा, व्यवहारिकता और सार्वभौमिकता पर बल दिया। इसने नये राज्य की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व सैन्य सिद्धांतों की नींव डाली तथा अपनी नीति व रणनीति के आधार का गठन किया। इसने राज्य नीति के संबंध में अल्लाह की वाणी की श्रृखला आनी प्रारंभ हो गयी। जंग के सिद्धांत के रूप में पवित्र कुरआन ने मुसलमानों को जंग के उद्देश्य व लक्ष्य, इसकी प्रकृति, लाक्षणिकताएं, आयाम व नीति-सिद्धांत प्रदान किये। कुरआन ने फौजी रणनीतिक की अपनी अवधारणा भी बतायी तथा जंग संचालन के लिये इसके अपने स्पष्ट नियमों व सिद्धांतों की नींव डाली।

एडवर्ड मीड अर्ले ने लिखा है, "युद्ध ईश्वर का कार्य नहीं है। लोग, नेतृत्व और राष्ट्र जो करते हैं अथवा जो कर पाने में विफल रहते हैं उनमें से युद्ध जन्म लेता है।" मीड का शोध प्रबंध पूर्णत: इस विषय पर पारंपरिक चिंतन का प्रतिनिधित्व करता है। यद्यपि जंग पर कुरआन के विचार नितांत भिन्न है। कुरआन के अनुसार जंग का आरंभ ही अल्लाह के उद्देश्यों के लिये होता है। इस प्रकार जंग आरंभ से अंत तक 'अल्लाह की वाणी' से नियंत्रित व निर्धारित होता है।

जंग पर कुरआन का सिद्धांत पूर्णतया सम्पूर्ण कुरआन की विचारधारा से जुड़ा है। यही विचारधारा इस सिद्धांत की कार्यविधि एवं अनुप्रयोग के लिये वातावरण व दशाएं प्रदान करती है। ये निश्चित दशाएं व वातावरण मिले, तो यह सिद्धांत अत्यंत प्रभावकारी है, जबकि इनके अभाव में इस सिद्धांत की तीक्ष्णता व बल नष्ट होने लगता है और कुल-मिलाकर कुंद हो जाता है।

जंग पर कुरआन का दृष्टिकोण न तो संकुचित है और न ही एक पक्षीय। इसके उद्देश्य व प्रभाव समस्त मानव जाति के लिये हैं। कुरआन के अनुसार दमन को मिटाने और न्याय व शांति हेतु तात्कालिक दशा की प्राप्ति के लिये जंग छेड़ा जाता है। यह पवित्र पुस्तक इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये व्यवहारिक व करणीय कार्यपद्धति प्रदान करती है। यह कार्यपद्धति उदार एवं विस्तृत है। यह प्रतिद्वंद्वी को शांति बनाये रखने में सहयोग करने के लिये अधिकतम संभावना प्रदान करता है। जब जंग की अनुमति मिले, तो इसका लक्ष्य मानव गरिमा व मूल्यों का संरक्षण व प्रोत्साहन करना होता है, न कि इन्हें नष्ट किया जाना।

सम्पूर्ण रणनीति की कुरआन की अवधारणा 'जिहाद' पूर्ण राष्ट्रीय सामर्थ्य की तैयारी व प्रयोग चाहती है और फौजी उपकरण इसके तत्वों में से एक है। समग्र रणनीति के एक घटक के रूप में इस फौजी रणनीति का लक्ष्य जंग की तैयारी स्तर से ही शत्रु को आतंकित करने तथा शत्रु द्वारा आतंकित होने से बचाव के प्रभावकारी उपाय करना होता है। आदर्श स्थितियों में जिहाद प्रत्यक्ष परिणाम को जन्म देकर शत्रु पर अपना निर्णय थोपने की स्थिति ला सकता है। जहां ऐसा नहीं होता है, फौजी रणनीति को आगे लाकर तैयारी के स्तर से ही जीत सुनिश्चित करने का लक्ष्य होना चाहिए। यदि इस अवसर से भी चूक जाएं, तो आमने-सामने की लड़ाई के समय शत्रु दल में आतंक भर देना चाहिए। यद्यपि जब सभी स्तरों पर फौजी रणनीति स्वतंत्र रूप में नहीं, अपितु समग्र रणनीति अर्थात जिहाद के अभिन्न भाग के रूप में कार्य करेगी, तो ही अपना निर्दिष्ट उद्देश्य प्राप्त कर सकेगी। जंग का कुरआनी सिद्धांत अपने नैतिक व मानवीय तत्वों में अत्यंत समृद्ध है। कुरआन जंग के समय अल्लाह द्वारा निश्चित की गयी सीमा के उल्लंघन को निषिद्ध करता है।

यह अज्ञानता के दिनों में प्रचलित बर्बरता व अमानवीय व्यवहार एवं जंग की पद्धतियों को प्रतिबंधित करती है। यद्यपि, अपने शत्रुओं से बातचीत के समय समानता व पारस्परिकता की विधि का अनुसरण करने की अनुमति है, पर मोमिनों को सदा संयम व सहिष्णुता रखने का परामर्श दिया गया है!

अपने वैध उद्देश्यों व सीमाओं के भीतर कुरआन जंग को बच्चों का खेल नहीं मानती है। इसमें सम्पूर्ण जंग की स्पष्ट अवधारणा दी गयी है। इसमें कहा गया है कि राष्ट्र और इसके व्यक्ति दोनों को पूर्ण जंग लड़ना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि राष्ट्र और व्यक्ति दोनों को अपनी धार्मिक, नैतिक और भौतिक संसाधनों से पूर्ण जंग में सम्मिलित होना चाहिए। पुस्तक पवित्र कुरआन जंग की तैयारी पर अधिकतम बल देती है। यह चाहती है कि हम स्वयं को जंग के लिये पूरी सामर्थ्य के साथ तैयार करें। पूरी सामर्थ्य के साथ तैयारी का परीक्षण शत्रु के मन में आतंक भरने की हमारी क्षमता में निहित होता है।

शत्रु के मन में आतंक भरने अथवा शत्रु द्वारा हमें आतंकित करने के प्रयासों को विफल करने की सामर्थ्य अंततः हमारे दीन की ताकत से जुड़ा हुआ होता है। समग्रता में व्यवहार में लायी गयी जंग के कुरआनी आयाम किसी भी प्रकार के मनोवैज्ञानिक विकार से मुसलमान फौज को सम्पूर्ण सुरक्षा प्रदान करता है। इसके विपरीत दीन में कमजोर विश्वास शत्रु को हमारे विरुद्ध सफल मनोवैज्ञानिक प्रहार करने का अवसर प्रदान करता है। यह हमारे दीन के विश्वास की ताकत और हमारे शत्रु की आस्था की दुर्बलता पर निर्भर करता है कि हम अपने शत्रु के मन में आतंक भरने के लिये सुनियोजित योजना व कार्रवाई की पहल कर सकें।

जंग हमारे सभी व्यक्तियों, वस्तुओं, सामर्थ्य और प्रधान के साथ लड़ी जानी चाहिए। जंग से संबंधित निर्णय गंभीर व व्यापक परामर्श के पश्चात लिये जाने चाहिए। एक बार लक्ष्य निर्धारित कर लिया जाए तो उसे सतत प्रयास व संघर्ष, धैर्य, दृढ़ता व निरंतरता, विचारों व कार्यों में एकरूपता, त्याग व समर्पण, इच्छापूर्वक आज्ञापालन व अनुशासन, आक्रामकता व प्रभुत्व और अल्लाह की इबादत व उसकी इच्छा के प्रति निष्ठा के साथ उसे सर्वोच्च रखा जाना चाहिए और उसे प्राप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए। दीन के मार्ग में किये जाने वाले जंग में अल्लाह का सहयोग व सहायता निहित तो होती है, पर इसके लिये आवश्यक होता है कि हम जंग छेड़ने के लिये अल्लाह द्वारा निश्चित मानकों पर खरे उतरें।

अल्लाह केवल उनकी सहायता करता है, जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं। वह नित्य के नियम के रूप में किसी जन समुदाय पर अपनी असीम कृपा नहीं बरसाता है। जंग जितना ही शत्रु पर अपनी इच्छा थोपने का साधन है, उतना ही यह हमारी अविचलित आस्था और समर्पण का प्रमाण देना भी होता है।

जंग पर कुरआन के सिद्धांत अपनी आधारभूत अवधारणा में ईश्वरीय हैं, परंतु विकासक्रम और अनुप्रयोग में इसकी प्रकृति मानवीय है तथा इसमें चर व अचर दोनों कारक हैं। इस सिद्धांत का मुख्य गुण इसके 'स्थिर तत्व' में है, जो बदले में इसके 'परिवर्तनशील तत्वों' के विकास व अनुप्रयोग के लिये निर्देश व मार्गदर्शन उपलब्ध कराता है। आधुनिक सैन्य विचार में अंतर्निहित कमी यह है कि यदि इसमें अपने सिद्धांत व दर्शन को आधार देने के लिये कोई स्थिर तत्व है भी तो वह न के बराबर है। यहां तक कि आधुनिक सैन्य विचार का प्रमुख तत्व युद्ध के सिद्धांतों में भी स्थिरता का अभाव है। अपने नियत गुणों के अधीन कुरआनी सिद्धांत युद्ध के आधुनिक सिद्धांतों के विभिन्न सिद्धांतों की बड़ी मात्रा ग्रहण कर सकती है।

जंग का एकमात्र स्थिर व अपरिवर्तनशील कारक इसका मानवीय पक्ष है और कुरआन के स्थिर तत्व इसी के चारों ओर गढ़े गये हैं। जंग पर कुरआन के सिद्धांत लड़ रहे प्रत्येक व्यक्ति, नेता अथवा फौजी पर इतनी कठोरता व प्रमुखता से प्रभावी होते हैं कि वह प्रभावकारी ढंग से जंग के सभी ज्ञान को प्राप्त और ग्रहण कर सके तथा व्यवहार में ला सके। यह व्यक्ति को जंग में किसी भी प्रकार के संकट या आपात स्थिति से निपटने के लिये शारीरिक, मानसिक व मजहबी रूप से प्रशिक्षित व तैयार करता है। यह पुस्तक कुरआन चाहती है कि ज्ञान और मानव व्यक्तित्व एक-साथ फले-फूलें और इस प्रकार यह दोनों के बीच एक आनंदपूर्ण व तारतम्य संतुलन बनाती है।

पवित्र रसूल (उन पर शांति हो) द्वारा प्रारंभ किये गये या लड़े गये फौजी अभियान जंग की कुरआन आधारित कला सीखने के लिये **'संस्था स्वरूप'** हैं। समय के साथ धूमिल होने की अपेक्षा, हमारे प्रशिक्षण एवं मानसिक व धार्मिक विकास के लिये इसका व्यवहारिक मूल्य बढ़ा है। हमें यह भ्रम नहीं पालना चाहिए कि चूंकि ये जंगें कम संख्या के साथ लड़ी गयीं और इसमें पुरातन प्रकृति के हथियार प्रयोग किये गये, तो वे आज के युग में प्रासंगिक नहीं है।

इन जंगों में से प्रत्येक अभियान में ऐसे जटिल निर्णय व कार्रवाइयां दांव पर लगी थीं, जो उससे पूर्व मानव जाति के समक्ष कदाचित ही आयी हों। पुस्तक में उनके विषय में किये गये अपेक्षाकृत सीमित अध्ययन में से हमने तार्किक अनुमान निकाला है कि फौजी, मजहबी और कूटनयिक साधनों के समन्वित व एकीकृत प्रयोग से राजनीतिक लक्ष्य प्राप्त किया जाना चाहिए। छोटे शत्रुओं से कूटनयिक ढंग से निपटा जाना

चाहिए और बड़े शत्रुओं से फौजी ताकत से निपटा जाना चाहिए। जंग की योजना और संचालन में अधिकतम निर्णय की धारा ग्रहण करना बहुधा बड़ा लाभ देता है। छोटी फौज को अपनी भू-राजनैतिक व भू-रणनीतिक स्थिति का बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयोग करते हुए उन नीतियों से अधिक श्रेष्ठ नीति ग्रहण करनी चाहिए, जो उससे बड़े शत्रु के पास हों। किसी भी लड़ रही फौज के लिये दीन में विश्वास मुख्य व सर्वाधिक बड़ी ताकत है।

अतः यहां जो जंग का सिद्धांत है वह अपने सभी आयामों व पक्षों में सबसे उत्तम व विशिष्ट है। इसका उद्देश्य अल्लाह का उद्देश्य है, यह निर्बलों, सताये गये, अत्याचार किये गये एवं पीड़ित लोगों का उद्देश्य है। इसका उद्देश्य न्याय, शांति व दीन में विश्वास स्थापित करना है। यह ऐसा उद्देश्य है, जो सर्वोच्च मानवीय मूल्यों की स्थापना, संरक्षण व प्रोत्साहन को सुनिश्चित करता है। इसके आयाम मानव और उसके परम गंतव्य के निर्माण के पीछे के उद्देश्य को ध्यान में रखकर तैयार किये गये हैं। ये आयाम जंग के खतरे पर विजय पाने के लिये सुसज्जित करते हैं। इसमें जंग में संन्निहित मानवीय समस्याओं से निपटने के लिये आचार संहिता है। यह संहिता न केवल अपने नैतिक मूल्यों में अत्यंत समृद्ध है, अपितु इसका अनुपालन अल्लाह के आदेश में सुनिश्चित किया गया है। यह जंग की एक ऐसी रणनीति प्रदान करता है, जो शत्रु के विश्वास को नष्ट करने तथा उसके शारीरिक व मानसिक क्षमता को पूर्णत: प्रभावहीन करने वाला होता है। इस ओर यह जंग के संचालन के लिये अपने नियम व सिद्धांत प्रस्तुत करता है।

जंग पर कुरआन के सिद्धांत की असीमित ताकत और कृपा हम पर बरसे, इसके लिये यह हम पर केवल और केवल यही बाध्यता डालती है कि हम अपनी ओर से इसको सम्पूर्णता में स्वीकार करें और व्यवहार में लायें।

कुरआन के संदर्भ-विषयवार

परिचय

1. बकरा: 2-5,7. 16.23

2. माइदा: 17-18

3. हिज्र:9

4. नहल: 89

5. अहजाब: 2, 45-46

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

1. बकरा:   143-144, 149-150

2. आले-इमरान: 110

3. रूम: 2-4

4. फ़ील: 1-5

जंग के कारण

1. बकरा: 190-191, 217, 244

2. निसा: 75-76, 84

3. माइदा: 35, 67

4. अनाम: 151

5. अन्फाल: 34

6. तौबा: 13

7. हज: 39-418. फुरक़ान: 68-69

9. मोहम्मद: 7

जंग का उद्देश्य

1. बकरा: 27, 40, 192-193

2. निसा: 88-91

3. अन्फाल: 39-40, 56-58, 61-62

4. तौबा: 1-5. 7-12, 17-18, 28-29

जंग की प्रकृति व आयाम

1. बकरा: 28, 154, 156-157,

2. आले-इमरान: 141-142, 156-157

3. निसा: 74, 77, 95-96

4. अनाम: 162

5. तौबा: 24, 38-39, 81-84,

6. हज: 58

7. अहजाब: 16

8. मोहम्मद: 7

9. फतह: 22-23

10.सफ्फात: 10-13

जंग के नीति-सिद्धांत

1. बकरा: 190, 191, 194

2. मोहम्मद: 4

जंग की रणनीति

1. आले-इमरान: 124-126, 151, 153-154

2. अन्फाल: 9-12, 59-60

3. तौबा: 25-26

4. अहजाब: 26-27

5. फतह: 4, 18

जंग का संचालन

1. बकरा: 186, 245

2. आले-इमरान: 139, 140, 146, 159, 172-173, 195, 200

3. निसा: 71, 102, 104

4. अन्फाल: 11, 15-16, 45-46, 63, 65, 67

5. तौबा: 5, 41, 123

6. मोहम्मद: 4, 35

7. फतह: 29

8. सफ्फात: 4

कुरआन के फौजी विचार का विस्तार

1. आले-इमरान: 122-127, 139-149, 151-155, 157-160, 165-166, 169-170, 172-173, 179

2. अन्फाल: 1, 5-12, 17-19, 39-40, 42-46, 48, 56-69, 73

3. तौबा: 38-40, 43-49, 81-87, 91-93, 111

4. अहजाब: 9-27

5. फतह: 1-6, 10, 18 26-27, 28

कुरआन के संदर्भ- सूरावार

बकरा

1. परिचय: 2-5,7,16,23

2. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य: 143-144, 149-150

3. जंग के कारण: 190-191.217,244

4. जंग का उद्देश्य: 27,40, 192-193

5. जंग की प्रकृति एवं आयाम: 28, 154, 156-157, 214, 216, 218

6. जंग के नीति-सिद्धांत: 190, 191, 194

7. जंग का संचालन: 186, 245

आले इमरान

1. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य: 110

2. जंग की प्रकृति एवं आयाम:141-142, 156-157, 160, 169-17

3. जंग की रणनीति: 124-126; 151, 153-154

4. जंग का संचालन: 139-140, 146, 159, 172-173, 195, 200

5. कुरआन के विचार का अनुप्रयोग: 122-127, 139-149, 151-155, 157-160, 165-166, 169-170, 172-173, 179

निसा

1. जंग के कारण: 75-76, 84

2. जंग का उद्देश्य: 88-91

3. जंग की प्रकृति एवं आयाम: 74, 77, 95-96

4. जंग का संचालन: 71, 102, 104

माइदा

1. परिचय: 17-18

2. जंग के कारण: 35, 67

अनाम

1. जंग के कारण: 151

2. जंग की प्रकृति एवं आयाम: 162

अन्फाल

1. जंग के कारण: 34

2. जंग का उद्देश्य: 39-40, 56-58, 61-62

3. जंग की रणनीति: 9-12, 59-60

4. जंग का संचालन: 11, 15-6, 45-46, 63, 65, 67

5. कुरआन के विचार का अनुप्रयोग: 1, 5-12, 17-19, 39-40, 42-46, 48, 56-69, 73

तौबा

1. जंग के कारण: 13

2. जंग का उद्देश्य: 1-5, 7-12, 17-18, 28-29

3. जंग की प्रकृति व आयाम: 24, 38-39, 81-84, 111

4. जंग की रणनीति: 25-26

5. जंग का संचालन: 5, 41, 123

6. कुरआनी फौजी विचार का अनुप्रयोग: 38-40, 43-49, 81-87, 91-93, 111

हज

1. परिचय: 9

नहल

1. परिचय: 89

हज

1. जंग के कारण: 39-41

2. जंग की प्रकृति व आयाम: 58

फुरकान

1. जंग के कारण: 68-69

रूम

1. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य: 2-4

अहजाब

1. परिचय: 21, 45-46

2. जंग की प्रकृति व आयाम: 16

3. जंग के लिये रणनीति: 26-27

4. कुरआन के फौजी विचार का अनुप्रयोग: 9-27

मोहम्मद

1. जंग के कारण: 7

2. जंग की प्रकृति व आयाम: 7

3. जंग का नीति-सिद्धांत: 4

4. जंग का संचालन: 4, 35

फतह

1. जंग की प्रकृति व आयाम: 22-23

2. जंग के लिये रणनीति: 4, 18

3. जंग का संचालन: 29

4. कुरआनी फौजी विचार का अनुप्रयोग: 1-6, 10, 18, 26-27, 29

सफ्फात

1. जंग की प्रकृति व आयाम: 10-13

2. जंग का संचालन: 4

फील

1. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य: 1-5

कालक्रम

रसूल का जन्म	570 ईस्वी
मक्का पर अब्राहम का आक्रमण	570 ईस्वी
(हाथी का वर्ष)	
पवित्र रसूल के मिशन की घोषणा (नब्बुवात)	610 ईस्वी
हरकुलिस का रोम के सम्राट के रूप में घोषणा	610 ईस्वी
रोमन साम्राज्य का फारस पर आक्रमण	610 ईस्वी
फारस का रोम पर विजय	
क) एंटिऑक	611 ईस्वी
ख) अलेप्पो	611 ईस्वी
ग) दमाकस	611 ईस्वी
घ) येरूशलम	615 ईस्वी
ङ) इजिप्ट	616 ईस्वी
च) त्रिपोली	616 ईस्वी
छ) एशिया माइनर	616 ईस्वी
फारस के विरुद्ध रोम का प्रति-आक्रमण-	**622 ईस्वी**
रोमन की फारस पर जीत	
क) ट्रेलजिजान्ड	622 ईस्वी
ख) सिलिशियन गेद्व	622 ईस्वी
ग) कैप्पाडोसिया	623 ईस्वी
घ) सिलिशिया	624 ईस्वी
ङ) काजविन	624 ईस्वी
च) गंजका	625 ईस्वी
छ) निनेव	627 ईस्वी
खुसरो परवेज की हत्या ...	627 ईस्वी
फारस और रोम के शांति समझौता...	628 ईस्वी
मदीना से मुसलमानों का निकल जाना (हिजरा) ...	622 ईस्वी
उम्मा की घोषणा...	622 ईस्वी
लड़ने के लिये अल्लाह के आदेश का आना...	622 ईस्वी
बद्र की जंग...	624 ईस्वी
उहुद की जंग..	625 ईस्वी
मदीना का घेराव...	627 ईस्वी
हुदैबिया की संधि...	628 ईस्वी
खैबर की विजय (फरवरी)...	628 ईस्वी
मक्का की तीर्थयात्रा (जून)...	629 ईस्वी
मुता की जंग (फरवरी)...	629 ईस्वी
मक्का पर विजय (सितम्बर)...	630 ईस्वी
हुनैन की जंग (जनवरी)...	630 ईस्वी

तबूक का अभियान (अप्रैल)...	630 ईस्वी
पवित्र रसूल की मृत्यु (सितम्बर)...	632 ईस्वी

संदर्भग्रंथ-सूची

1. अली सईद अमीर। एक शॉर्ट हिस्ट्री आफ द सरासेंस। लंदन। मैकमिलन पब्लिशर्स, 1955।

2. आर्रबेरी, आर्थर जे.। द कोरान इंटरप्रेटेड वलूम I और II। लंदन, जार्ज एलेन एंड अनविन, 1955।

3. बाशू-मेल मोहम्मद अहमद। द ग्रेट बैटल आफ बद्र।

4. बोफ्र, आंद्रे। ऐन इंट्रोडक्शन टू स्ट्रेटेजी लंदन, फैबर एंड फैबर 1972।

5. बोफ्र, आंद्रे। स्ट्रैटजी आफ डेटरेंस, लंदन, फैबर एंड फैबर 1972।

6. बोफ्र, आंद्रे। स्ट्रैटजी आफ ऐक्शन, लंदन, फैबर एंड फैबर 1967।

7. ब्लेनी, जेफ्री। द काजेज आफ वार। लंदन, द मैकमिलन प्रेस लिमिटेड,1973।

8. ब्रॉडी, बर्नार्ड। वार एंड पॉलिटिक्स। लंदन, मैकमिलन कंपनी न्यूयार्क, 1973।

9. ब्रॉडी, बर्नार्ड। स्ट्रैटजी इन द मिसाइल एज। न्यू जर्सी, प्रिंसटन प्रेस, 1959।

10. क्लाजविट्ज, कार्ल वॉन। आन वार। लंदन, राउटलेज एंड केगन पॉल, 1968।

11. क्लाजविट्ज, कार्ल वॉन। प्रिंसिपल्स आफ वार। हैरिसबर्ग, द स्टैक पोल को.,1960।

12. अर्ले, एडवर्ड मीड। द मेकर्स आफ माडर्न स्ट्रैटजी। लंदन, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1952।

13. इक्लीज, हैरी ई। मिलिटरी कान्सेप्ट्स एंड फिलासफी। न्यू बर्न्स विक, रूतजर्स यूनीवर्सिटी प्रेस, 1965।

14. फॉश (मारर्शल)। द प्रिंसपिल्स आफ वार। लंदन, चैम्पमैन एंड हाल, 1903।

15. जनरल हेडक्वार्टर्स पब्लिकेशन। आइने-सरफरोशी, रावलपिंडी।

16. ग्लब, जॉन बैगट। द ग्रेट अरब कन्क्वेस्ट्स। लंदन, होडर एंड स्टफटन, 1966।

17. ग्रेयर्स। ह्यूमन रिलेशंस: द कैटास्ट्रोफिस आफ वार।

18. हालपेरिन, मॉर्टन एच। कन्टेम्परेरी मिलिटरी स्ट्रैटजी। बोस्टन। लिटिल ब्रो एंड को.,1967.

19. हमीदुल्लाह, एम.। द बैटलफील्डस आफ प्रॉफेट मुहम्मद। वोकिंग-इंग्लैंड, 1953।

20. हमीदुल्लाह, एम. (डॉ)। द मुस्लिम कंडक्ट आफ स्टेट। लाहौर, शाह मोहम्मद अशरफ, 1953।

21. हर्ट, लिडल। स्ट्रैटजी: द इनडायरेक्ट अप्रोच। लंदन, फैबर एंड फैबर लिमिटेड।

22. हार्टमान, एफ. एच.। द रिलेशंस आफ नेशंस। लंदन, मैकमिलन को., 1969।

23. हित्ती, फिलिप के.। हिस्ट्री आफ द अरब्स। लंदन, मैकमिलन, 1958।

24. किसिंजर, हेनरी (डॉ)। नेसिसिटी फॉर चॉयस, यूएसए हार्पर एंड रो पब्लिशर, 1961।

25. मैकियावली, निकोला। द आर्ट आफ वार। न्यूयार्क, द बाब्स-मेरिल को., 1965।

26. माओत्सेतुंग। सेलेक्टेड मिलिटरी राइटिंग्स आफ माओत्सेतुंग। पीकिंग, फॉरैन लैंग्वेज प्रेस, 1968।

27. मॉर्गेन्थाउ, हैन्स. जे.। पॉलिटिक्स अमंग नेशंस। न्यूयार्क, अल्फ्रेड, ए. नोफ, 1948।

28. मौदूदी, सईद अबु अला। तफीमुल कुरआन लाहौर, मकतबा तैमीर—ए—इंसानियत, 1966।

29. मौदूदी, सईद अबु अला। अल जिहाद फील इस्लाम। लाहोर, अद्रा तर्जुमन—उल—कुरआन, 1974।

30. मिडलार्सकी, मानुस-ई वार: पॉलिटिकल वाइलेंस इन इंटरनेशनल रिलेशंस। न्यूयार्क, द फ्री प्रेस, 1975।

31. मॉर्गन पैट्रिक, एम. डेटरेंस: एक कॉन्सेप्चुअल अनैलिसिस। सेज पब्लिकेशन, 1977।

32. आर्गैंस्की, ए.एफ.के. वर्ल्ड पॉलिटिक्स। न्यूयार्क, अलफ्रेड. ए नॉफ, 1959।

33. आसगुड, रॉबर्ट एंडीकॉट। द लिमिटेड वार। शिकागो, यूनीवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1957।

34. रॉबर्ट, गिंसबर्ग। द क्रिटिक आफ वार। शिकागो, रेग्नेरी प्रेस,1970।

35. तबरी। तारीख-ए-तबरी।

36. टॉयनबी, अर्नाल्ड जे.। वार एंड सिविलाइजेशन। लंदन, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस।

37. टॉयनबी, अर्नाल्ड जे.। ए स्टडी आफ हिस्ट्री, लंदन आक्सफोर्ड प्रेस, 1957।

38. वाट, मोंटगोमरी। मोहम्मद ऐट मदीना। आक्सफोर्ड, द क्लैरेंडन प्रेस, 1956।

39. राइट, क्विंसी। ए स्टडी आफ वार। शिकागो, यूनीवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1965।

40. वाईलिज. जे. सी.। मिलिट्री स्ट्रैटजी, न्यूजर्सी, रतजर्स यूनीवर्सिटी प्रेस, 1967